वर्ष ८, अंक २

श्रीकृष्णाय नमः

कार्तिक पूर्णिमा १९९०

वार्षिक चन्दा ३)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

गोपीकुमार

GITA PRESS, GORAKHPUR.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, कार्तिक पूर्णिमा, सितम्बर १९३३ | अंक २ पूर्ण संख्या ८२

वेदोपदेश

नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकन्निपेभ्यः। युञ्जे वाचं शतपदीम् ॥ १ ॥

जो यज्ञ में पूर्व उपस्थित होते हैं उन देवताओं के अर्थ नमस्कार करते हैं। जो यज्ञ में साथ स्थित होते हैं उनको नमस्कार करते हैं। हमें अभीष्ट फल देने के लिये असंख्यों स्तुति रूप ऋचाओं का प्रयोग करता हूँ ॥ १ ॥

पुनरूर्जा निवर्तस्व पुनरग्न इषायुषा। पुनर्नः पाह्यंहसः ॥ २ ॥

हे अग्निदेव! बल सहित हमें फिर प्राप्त होवो, अन्न और आयु सहित फिर प्राप्त होवो, हमारी पाप से फिर रक्षा करो ॥ २ ॥

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम् ॥ ३ ॥

हे शक्तिमान् इन्द्र ! यदि मैं गौवों का स्वामी होऊं तो इस मतीषो स्तोता को देना चाहूं और फिर धन दूं ॥ ३ ॥

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे । प्र न आयूंषि तारिषत् ॥ ४ ॥

वायु हमारे हृदय के लिये रोगों को शान्त करने वाला और सुख को उत्पन्न करने वाला औषध रूप होकर बहे और हमारे आयुकारी अन्नों को बढावे ॥ ४ ॥

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा । स नो जीवातव कृधि ॥ ५ ॥

हे वायो ! तुम हमारे पिता हो, तुम हमारे भ्राता हो, तुम हमारे मित्र हो । तुम हमें जीवन के हेतु यज्ञ के करने में समर्थ करो ॥ ५ ॥

वैकुण्ठ या साकेत

(ले श्री महावीर प्रसाद जी बजरंगबली 'श्रीवास्तव')

गतांक से आगे ।

अब रामायणी जी के इस कथन पर विचार किया जाता है:-

१. आश्चर्य का विषय है कि वैकुण्ठ व क्षीराब्धि दो भिन्न स्थानों के कहने से रामायणी जी को दो पृथक् भगवान् की आवश्यकता न पड़ी, एक ही भगवान् से दोनों स्थानों के आधिपत्य का काम चल गया, पर 'साकेत' का प्रयोग करने के लिये अवश्य कोई दूसरे भगवान् होने चाहियें, जिन के लिये 'साकेतनाथ' शब्द का प्रयोग किया जा सके। पाठक वृन्द समझ सकते हैं कि रामायणी जी का इस प्रकार घोर संसारी जीवों का सा भेद भाव भगवान् में आरोपण करना कहां तक ठीक है। प्राचीन वैष्णव आर्ष ग्रन्थों तथा पूज्यपाद गोस्वामी जी के शब्दों में इस तरह के भेद भाव पूर्ण कलुषित विचारों का लेश मात्र भी स्पर्श नहीं है। जो परम पुरुष अखिल ब्रह्माण्ड नायक परवासुदेव, वैकुण्ठ नाथ-व्यापक ब्रह्म और क्षीराब्धि नाथ हैं, वही साकेत नाथ एवं गोलोकनाथ है ।

रामायणी जी को 'साकेत' शब्द से कुछ इतना द्वेष है कि श्रीराम रूप परायण हरि भक्तों के सर्वस्व, नित्य साकेत बिहारी श्रीराम जी के लिये आप 'वैष्णव ग्रन्थों तथा सिद्धान्त और रहस्य के जानने वाले महात्माओं व आचार्यों के सम्मत से सर्वथा अपरिचित- किसी विजाती अवैष्णव की भान्ति 'कोई साकेत नाथ' शब्द का प्रयोग करते हैं। इससे यही सूचित होता है कि रामायणी जी ने श्रीरामानुज जी व वैष्णव संप्रदाय का तिलक तो अवश्य धारण कर रक्खा है, पर वैष्णव ग्रन्थों से वे सर्वथा अपरिचित हैं और वैष्णव सिद्धान्त तथा रहस्य के जानने वाले किसी महानुभाव का

समागम भी आप को प्राप्त नहीं हुआ। प्रत्युत अपने मनमुखी विचारों को ही आपने, शास्त्र मान रक्खा है।

२ आप का कथन है कि यदि गोसांई जी अपने प्रतिपाद्य भगवान् श्रीराम को 'कोई साकेत नाथ' मानते होते, तो जहां २ 'वैकुण्ठ' शब्द आया है वहां २ क्या 'साकेत' नहीं रख देते? इसका उत्तर यह है कि जो भगवान् वासुदेव वैकुण्ठ नाथ व्यापक ब्रह्म और क्षीराब्धि नाथ हैं, वही साकेतनाथ और गोलोकनाथ हैं, परमात्मा दो चार नहीं हैं यह प्रथम ही लिखा गया। अतएव प्रसंग के अनुकूल, जहां जैसी आवश्यकता पड़ी है, 'वैकुण्ठ' 'क्षीर सागर' एवं साकेत के पर्य्याय 'अयोध्या'–'अवध' इत्यादि सभी शब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया है। जिस प्रकार रामायणी जी को साकेत शब्द से पूरा द्वेष है उस प्रकार गोस्वामी जी को 'वैकुण्ठ' शब्द से कोई द्वेष नहीं था, नहीं तो अवश्य जहां २ 'वैकुण्ठ' शब्द का प्रसंग आया है वहां भी 'वैकुण्ठ' की जगह 'साकेत' या साकेत के पर्य्याय वाची 'अयोध्या' 'अवध' 'अपराजिता' आदि शब्द लिख देते। वैकुण्ठ शब्द की छाया भी अपने ग्रंथ में न रहने देते। पर गोस्वामी जी में इस प्रकार का पक्ष पात नहीं था। पर इस का अर्थ खींच कर यह लगाना कि नित्य विभूति में प्रभु का नित्यधाम 'साकेत' न हो कर 'वैकुण्ठ' ही है, वैष्णव आर्ष ग्रन्थों के सर्वथा विपरीत है।

वैष्णव आर्ष ग्रन्थों के अनुसार साकेत-गोलोक वैकुण्ठ सभी धाम नित्य विभूति में हैं। त्रिपाद् विभूति, परम धाम, परम पद, पर व्योम, ये सब उस नित्य विभूति के ही नाम हैं। वह नित्य विभूति सच्चिदानन्दमय नित्य, दिव्य है, प्राकृत काम क्रोधादि विकारों की वहां गम्य नहीं। जन्म-मृत्यु शोक आदि से रहित है। अविद्या माया का वहां प्रवेश ही नहीं। पुनरावृत्ति की वहां से संभावना नहीं। उस दिव्य विभूति के लिये ही भगवान् ने गीता में कहा है:-

> न तद् भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
> यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

भगवत्सेवा परायण मुक्त आत्माओं का वहां परप्रभु के संग निवास होता है। मनुष्यों की कौन कहे ब्रह्मादिक देवताओं की भी वहां गम नहीं। उस नित्य विभूति की नित्य लीला का दिग्दर्शन कराके संसार के जीवों को अपनी ओर आकर्षित करने के उद्देश्य से ही विन कारण कृपालु, परम प्रभु ने नित्य विभूति गत वैकुण्ठ साकेत और गोलोक के अनुसार उसी नाम के अनेकों वैकुण्ठ साकेत या अयोध्या एवं गोलोक या व्रज-वृन्दावन की रचना इस लीला विभूति में ही ब्रह्मांड २ प्रति कर रक्खी है। प्रमाण के लिए त्रिपाद् विभूति महानारायणोपनिषद् की निम्नलिखित श्रुति देख सकते हैं।

> एकस्मिन्नविद्यापादेऽनन्त कोटि ब्रह्माण्डानि सावर्णानि श्रूयन्ते तस्मिन्नेकस्मिन्नण्डे, बहवो लोकाश्च बहवो वैकुण्ठाश्चानंत विभूतयश्च सन्त्येव॥

सदा शिव संहिता में पांच वैकुण्ठ विख्यात हैं–

> वैकुंठ पंचके ख्यातं क्षीराब्धि च रमालयम्।
> कारणं महा वैकुण्ठं पंचमं विरजा परम्॥

इनमें १ क्षीर सागर २ रमा वैकुण्ठ ३ कारण वैकुण्ठ ४ महावैकुण्ठ विरजा के इसी पार है पांचवां विरजा पार है यह त्रिपाद् विभूतिगत पर वैकुण्ठ है त्रिपाद् विभूतिगत 'अयोध्या या साकेत' के सम्बन्ध में प्रथम ही वृहद् ब्रह्म संहिता के श्लोक प्रमाण में लिखे जा चुके हैं उस त्रिपाद् विभूतिगत साकेत या अयोध्या के अनुसार मर्त्य लोकगत

अयोध्या या साकेत' प्रत्यक्ष ही है जहां कल्प २ प्रति श्रीरामावतार हुआ करता है। इसी प्रकार भुवन २ प्रति 'साकेत या अयोध्या' का स्थान है जिसके लिये श्रीरामचरित मानस में ही उत्तरकांड में काक भुशंडि जी के वचन प्रमाण हैं। यथा–

अवध पुरी प्रति भुवन निनारी।
सरयू भिन्न भिन्न नर नारी॥
दशरथ कौशल्या सुनु ताता।
विविधि रूप भरतादिक भ्राता॥
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा।
देखेउ बाल विनोद अपारा॥

यही बात गोलोक (व्रज-वृन्दावन) के संबन्ध में भी है:–

अब पूज्यपाद गोस्वामी जी ने राम चरित मानस में नित्य साकेत विहारी 'श्रीराम' रूपी 'हरि' के अवतार चरित का ही विस्तृत वर्णन किया है जो प्रकृति मंडल गत 'अयोध्या' या 'साकेत' में हुआ है। साथ ही अवतार हेतु प्रकरण में अवतार के स्थूल कारणों का उल्लेख करते हुये जय विजय की शाप एवं नारद मोह प्रसंग में वैकुण्ठ और क्षीराब्धि की भी चर्चा आगई है। पर यहां पर स्मरण रखना चाहिये कि जय विजय को सनकादिक का शाप 'रमा वैकुण्ठ' में हुआ है। क्षीराब्धि का स्थान भी विरजा के इसी पार है यह उपरोक्त पांच वैकुण्ठ के प्रमाण में ही स्पष्ट है। कहने का तात्पर्य्य यह कि 'शाप' इत्यादि, अवतार स्थूल कारण विरजा के इसी पार लीला विभूति के स्थानों में ही हुआ करते हैं और भी कई स्थूल कारण मनु शत रूपा का वरदान भानु प्रताप को शाप हरगणों को शाप, नारद का भगवान को शाप इत्यादि नैमिषारण, केकैयदेश, तथा क्षीर सागर के मार्ग पर हुये हैं। भगवान को वृन्दा का शाप भी क्षीर समुद्रस्थ श्वेत द्वीप में हुआ है। त्रिपाद विभूति गत वैकुण्ठ साकेत या गोलोक में तो कृपा पूर्वक जगत् के जीवों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये, पर विभूति गत नित्य विहार का दिग्दर्शन कराने के अभिप्राय से अवतार लेने के लिये प्रभु की स्वतन्त्र 'इच्छायें संकल्प' मात्र ही अवतार का कारण हुआ करता है। जिसके लिये 'इच्छा मय नरवेष संवारे' एवं 'निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर गो महि द्विज लागी' इत्यादि वाक्यों से मानस में संकेत भी जगह जगह पर संकेत किया गया है। यह प्रभु की स्वतंत्र इच्छा या संकल्प ही पर विभूति गत अवतार का सूक्ष्म हेतु है। प्रभु की उस इच्छा या संकल्प के होते ही लीला विभूति के अनेक स्थलों पर अनेक स्थूल कारण भी प्रकट हो जाया करते हैं। इस प्रकार जय विजय के शाप के वर्णन में जिस वैकुण्ठ का संकेत किया गया है। वह लीला विभूति गत रमा वैकुण्ठ है। इसी प्रकार श्रीराम चरित मानस में जहां २ वैकुण्ठ शब्द आया है, वहां २ प्रसंग पर विचार करने से पता लग जायगा कि उन सभी स्थानों में वैकुण्ठ शब्द से तात्पर्य्य विरजा के इसी पार के लीला विभूति गत वैकुण्ठ से ही है। पर विभूति के लिये गोस्वामी जी ने साकेत, गोलोक, वैकुण्ठ किसी भी साम्प्रदायक शब्द का प्रयोग नहीं किया, किन्तु जहां, पर विभूति गत परं धाम को स्पष्ट करने का अवसर आ गया है वहां ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिन में वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत सभी साम्प्रदायक शब्द समा सकते हैं। अर्थात् नित्य विभूति के सम्बन्ध में गोस्वामी जी ने राम धाम, ममधाम, निज धाम, परंधाम शब्दों का प्रयोग किया है।

राम धामदा पुरि सुहावनि, लोक समस्त विदित अति पावनि।
तिन नृप सुनहिं कीन्ह परनामा, कहि सच्चिदानन्द परधामा

बहुहि कहहु करुणायतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुवंश मणि, किमि गवने निजधाम ॥
करहु कल्प भरि राज्य तुम्ह, मोहिं सुमिरेहु मन माहिं।
पुनि ममधाम सिधारहु, जहां सन्त सब जाहिं ॥
अति प्रिय मोहिं इहां के वासी।
ममधामदा पुरी सुख रासी ॥

इन रामधाम, परधाम, ममधाम, निजधाम आदि शब्द में निज २ उपासना संप्रदाय के अनुकूल वैकुण्ठ-साकेत गोलोक सभी शब्द समाते हैं। ऐसा करने का कारण यह है कि परम प्रभु श्रीराम के अवतार चरित्र का अनुराग पूर्वक श्रवण तथा अनुकथन करने वाले सज्जन उपासना भेद से दो प्रकार से हुआ करते हैं।

१. नित्य साकेत विहारी द्विभुज, नित्य किशोर श्रीराम रूप हरि का स्वतंत्र अनुसंधान करने वाले श्रीरामोपासक।

२. पर वैकुण्ठ नाथ चतुर्भुज विष्णु रूप के उपासक जो कि अपने इष्ट विष्णु भगवान् के अवतार समझ कर ही श्रीराम चरित में रत होते हैं।

स्वरूप से दोनों एक प्रभु के ही उपासक हैं अन्तर इतना ही है श्रीराम रूप का स्वतंत्र अनुसंधान करने वाले उपासक वृन्द नित्य विभूति में अपना मुख्य इष्ट धाम 'साकेत' मानते हैं। इसी से वैकुण्ठ की अपेक्षा साकेत पर उनका अधिक ममत्व हुआ करता है। इसी प्रकार चतुर्भुज विष्णु रूप के अनुसंधान करने वाले श्रीराम चरित्र का अनुराग पूर्वक श्रवण अनुकथन करते हुये भी नित्य विभूति में अपना मुख्य इष्ट धाम वैकुण्ठ ही मानते हैं।

यही बात श्री कृष्णावतार के सम्बन्ध में भी है अर्थात् नित्य द्विभुज मुरलीधर श्रीकृष्ण का का स्वतन्त्र अनुसंधान करने वाले अपना मुख्य इष्ट धाम 'गोलोक' एवं पर वैकुण्ठ नाथ विषय भगवान के अवतार समझ कर श्रीकृष्ण चरित्र का श्रवण अनुकथन करने वाले उपासक अपना मुख्य इष्ट धाम वैकुण्ठ मानते हैं। सब गोलोक का विशेष सम्बन्ध कृष्णावतार से होने के कारण श्रीराम चरित मानस में गोलोक के विषय में कोई सन्देह उठाने का अवसर ही नहीं है। अब रही वैकुण्ठ और साकेत की बात, सो श्रीराम चरित का श्रवण अनुकथन करने वाले उपरोक्त दोनों प्रकार के उपासकों को अपने रचित श्रीराम चरित मानस में समान रूप से सम्मान पूर्वक स्थान देना ही गोस्वामी जी का अभिप्राय है। इसी से उदार चरित गोस्वामी जी ने परधाम के लिये 'वैकुण्ठ' या 'साकेत' दो में से एक शब्द भी न देकर राम धाम, परंधाम, निज धाम, ममधाम आदि शब्द देकर दोनों प्रकार के उपासकों की भली प्रकार संभाल की है। इतना ही नहीं किन्तु कैवल्य मोक्ष का अनुसंधान करने वाले निर्गुण उपासकों के लिये भी यह शब्द पूर्णतया सन्तोष प्रद है।

अब जिस प्रकार साकेत के पर्याय वाची अयोध्या, अवध इत्यादि शब्द लीला विभूतिगत श्रीराम जन्म भूमि के लिये ही आये हैं इसी प्रकार जहां तहाँ वैकुण्ठ शब्द भी लीला विभूति गत वैकुण्ठ के लिये ही आया है। विरजा पार त्रिपाद विभूतिगत पर वैकुण्ठ से वहाँ तात्पर्य्य नहीं है, यह प्रथम ही सूचित किया है। अतएव पाठकों के सन्तोष के लिये, उन प्रसंगों पर विचार करके इस बात का स्पष्टीकरण कर देना उचित जान पड़ता है।

जब जिन चौपाइयों का आश्रय लेकर रामायणी जी ने अपने 'वैकुण्ठ या साकेत' शीर्षक लेख में नित्य विभूति में नित्य धाम साकेत का अभाव सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, उन चौपाइयों पर ही प्रथम विचार किया जाता है।

अस कहि योग अग्नि तनु जारा।
राम कृपा बैकुंठ सिधारा॥

शरभंगी जी के वैकुण्ठ यात्रा की इस चौपाई के आगे दूसरी चौपाई निम्न लिखित है।

ताते मुनि हरि लीनन भयऊ॥
प्रभुहिं भेद भक्ति बर लयऊ॥

यहां पर 'भेद भक्ति' का शब्द ध्यान देने योग्य है। लंका कांड में श्रीदशरथ जी के सम्बन्ध में भी यह शब्द आया है।

ताते उमा मोक्ष नहिं पावा।
दशरथ भेद भक्ति मन लावा॥
सगुण उपासक मोक्ष न लेहीं।
तिन कहं राम भक्ति निजदेहीं॥
बार २ करि प्रभुहिं प्रणामा।
दशरथ हरषि गये सुर धामा॥

यहां पर यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि 'भेद भक्ति' में मन लगाने के कारण ही दशरथ जी मोक्ष को नहीं प्राप्त हुये। साथ ही त्रिपाद विभूति गत वैकुण्ठ गोलोक साकेत आत्यन्तिक मुक्ति के स्थान हैं बिना मोक्ष (मुक्तावस्था) प्राप्त हुये वहां प्रवेश होना सिद्धांत के ही विरुद्ध है। इसी से दशरथ जी 'सुरधाम' को ही गये हैं। यही बात शरभंग जी के प्रसंग में भी है अर्थात् 'भेद भक्ति' का वर उन्होंने भी मांग लिया है अतएव जिस प्रकार भेद भक्ति में मन लगाने के कारण ही दशरथ जी त्रिपाद विभूति को नहीं प्राप्त हुये, उसी प्रकार शरभंग जी का भी त्रिपाद विभूति गत 'पर वैकुण्ठ' को जाना सिद्धान्त के ही विरुद्ध है। अतएव वह भेद भक्ति का वर मांग कर लीला विभूति गत वैकुण्ठ लोक को ही गये हैं।

दूसरी बात यह कि त्रिपाद विभूति गत पर धामों में अपनी भावना के अनुसार भगवान का प्रत्यक्ष संयोग प्राप्त होता है वहां ध्यान करने की आवश्यकता नहीं रहती। पर शरभंग जी ने वैकुंठ यात्रा के समय भेद भक्ति का वर लेने के साथ ही साथ

'सीता अनुज सहित प्रभु, चाप बाण धर राम।
मम हिय बसहु निरन्तर, सगुण रूप श्रीराम॥'

इस प्रकार ध्यान का वर भी स्पष्ट रूप से मांगा है। इससे और भी स्पष्ट है कि वह विरजाके इसी पार लीला विभूति गत 'बैकुंठ' को ही गये हैं।

यहाँ पर एक सन्देह अवश्य हो सकता है कि लीला विभूति गत बैकुण्ठ में भी तो शंख चक्र गदा पद्म धारी चतुर्भुज विष्णु भगवान् के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त होते हैं तब वहां पर भी ध्यान की क्या आवश्यकता थी?

उत्तर—इसके दो कारण हैं प्रथम तो यह कि भगवान के प्रति आत्यन्तिक प्रत्यक्ष संयोग विरजा पार त्रिपाद विभूति में ही संभव है लीला विभूति गत किसी स्थान में भी प्रत्यक्ष संयोग का निरंतर रहना असंभव है संश्लेष विश्लेष अवश्य होता है। अतएव ध्यान की भी आवश्यकता रहती ही है।

दूसरी बात यह कि शरभंग की निरन्तर रति श्रीराम रूप में है जो उनके वर मांगने से ही स्पष्ट है। अतएव पर विभूति में उनका मुख्य इष्ट स्थान 'साकेत' ही है। पर भेद भक्ति के निर्वाहार्थ लीला विभूति गत विष्णु लोक या बैकुण्ठ में, 'जो कम मुक्ति का स्थान है, उन्हें निवास प्राप्त हो रहा है। अतएव वहां पर चतुर्भुज विष्णु रूप से अधिक प्रत्यक्ष संसर्ग रहने के कारण अपने इष्ट नित्य अवध या साकेत विहारी' श्रीराम रूप के अनुसंधान में अन्तर न पड़ जाय, इस कारण बैकुण्ठ में चतुर्भुज विष्णु रूप का प्रत्यक्षसंयोग प्राप्त होते हुये भी अपने इष्ट रूप के अनुसंधान में वहाँ भी दृढ़ रहने के लिये वरदान रूप से अपने इष्ट श्रीराम रूप का

निरन्तर ध्यान पान किया है। इस प्रसंग में 'भेद भक्ति' में रत होने के कारण आत्यन्तिक मुक्ति के स्थान त्रिपाद् विभूति गत पर बैकुण्ठ गोलोक साकेत में प्राप्त न हो सकने की बात सुन कर भी प्रायः सज्जन लोग (जिन्होंने इस विषय में गंभीर विचार नहीं किया) चकित हो सकते हैं। पर इस विषय को विशेष रूप से स्पष्टीकरण करने का यह अवसर नहीं है कारण कि ऐसा करने से लेख बहुत विस्तृत हो जाने की आशंका है। फिर भी सज्जनों के संतोष के लिये संकेत मात्र कुछ लेख देना आवश्यक प्रतीत होता है।

भगवान् का अनुसंधान अपने में ही अथवा 'अपने से पृथक्' करने के विचार से भक्ति के 'भेद भक्ति' और 'अभेद भक्ति' दो भेद हैं। दोनों की साधन तथा सिद्ध अवस्थायें भी होती हैं। भेद भक्ति की साधन तथा सिद्धि दोनों अवस्थाओं का स्थान लीला विभूति ही है। अन्त में उचित समय पर इस निष्ठा वालों को भी अभेद भक्ति की सिद्धावस्था के स्थान पर व्योम (त्रिपाद् विभूति) की ही प्राप्ति होती। पर व्योम या त्रिपाद् विभूति गत नित्य विहार या नित्य कैंकर्य्य की संज्ञा अभेद भक्ति ही है। 'अभेद भक्ति' की साधन अवस्था का स्थान लीला विभूति और सिद्धावस्था का स्थान पर व्योम या त्रिपाद् विभूति है। या विशेष रूप से स्मरण रखने की बात यह है कि 'भेद भक्ति' का स्थान यद्यपि लीला विभूति है पर उसका गौरव 'नित्य विभूति गत' अभेद भक्ति संज्ञक' नित्य कैंकर्य या नित्य विहार से भी कहीं अधिक है। भेद भक्ति के नैष्ठिकों ने ही भगवान् को भी अपने आधीन तथा अपना ऋणी बना रक्खा है। 'अहं भक्त पराधीनो' इस प्रभु के कथन की चरितार्थता भेद भक्ति के ही साधन या सिद्ध अवस्था के नैष्ठिकों द्वारा हुआ करती है। भेद भक्ति की दृढ़ निष्ठा ने ही श्रीमद्भागवत् में 'न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां, स्वसाधु कृत्या विबुधायुषापि वः' कहला कर भगवान् को गोपियों का ऋणी बनाया है। संकेत से इस विषय का दिग्दर्शन करा दिया गया है मर्मी सज्जन समझ लेंगे। विस्तार पूर्वक इस विषय का स्पष्टी करण किसी अन्य अवसर पर किया जायगा। वाल्मीकि रामायण में शरभंग जी का ब्रह्म लोक (ब्रह्मा जी का लोक) का जाना बिल्कुल स्पष्ट है। यथा–

सलोकतामाहिताग्नीनां ऋषीणां च महात्मनाम्।
देवानां च व्यतिक्रम्य ब्रह्म लोकं व्यरोहत॥
स पुण्य कर्मा भवने द्विजर्षभः पितामहं सानुचरं ददर्श ह।
पितामहश्चापि समीक्ष्य तं द्विजंननन्द सुस्वागतमित्युवाच ह

वाल्मीकि रामायण। सर्ग ५, श्लोक ४३, ४४

अर्थ–तदनंतर शरभंग जी अग्निहोत्रियों ऋषियों, महात्माओं, और देवताओं के लोकों को छोड़ते हुये ब्रह्म लोक में जा पहुंचे। पुण्यात्मा ब्राह्मण श्रेष्ठ शरभंग जी ने ब्रह्मलोक में जा अनुचरों से घिरे हुये पितामह ब्रह्मा जी के दर्शन किये। ब्रह्मा जी भी शरभंग को देख आनन्दित हुये और उनसे स्वागत वचन बोले।

श्रीराम चरित मानस में भी 'जात रहे बिरंचि के धामा' कह कर ब्रह्मलोक की तय्यारी का ही संकेत शरभंग जी ने किया है। अतएव इससे भी 'ब्रह्म लोक' से सम्बन्ध रखने वाले लीला विभूति गत बैकुण्ठ या विष्णु लोक का जाना ही स्पष्ट है। जहां पर कि ब्रह्मादिक देवों का बराबर आना जाना हुआ करता है मानस में ही बालकांड में 'देवन समाचार सब पाये। ब्रह्मादिक बैकुण्ठ सिधाये' से यह बात स्पष्ट है। इस प्रकार 'शरभंग जी के प्रसंग में, 'राम कृपा बैकुण्ठ सिधारा' में बैकुण्ठ

शब्द से तात्पर्य्य लीला विभूति गत वैकुण्ठ से ही है। त्रिपाद विभूति गत पर वैकुण्ठ का यहां प्रसंग ही नहीं है।

गरुड़ गयउ बैकुण्ठ तब, हृदय राखि रघुबीर।

इस प्रसंग में भी गरुड़ विरजा के इसी पार के लीला विभूति गत वैकुण्ठ या विष्णु लोक ही गये हैं कारण कि नारद जी के भेजे हुये उसी वैकुण्ठ से वह लंका आये थे। यथा,

इहां देव ऋषि गरुड़ पठायो।
राम समीप सपदि सो आयो॥

इस तरह का आना जाना त्रिपाद विभूति गत पर वैकुण्ठ से असंभव है:-

२-इसके अतिरिक्त इन्हीं गरुड़ के लिये मानस में बारम्बार वैनतेय शब्द का प्रयोग हुआ है। 'वैनतेय' से तात्पर्य्य 'विनता के पुत्र' गरुड़ से ही है। विनता के पुत्र होने से ही उन की वैनतेय संज्ञा है, जो लीला विभूति की ही बात है, यह बात नारद पंचरात्रांतर्गत बृहद् ब्रह्म संहिता में स्पष्ट है और वैनतेय गरुड़ की कथा विस्तार पूर्वक महाभारत में है। यह वैनतेय गरुड़ 'लीला विभूति गत 'वैकुण्ठ निवासी विष्णु भगवान् के वाहन हैं। अतएव 'वैनतेय' शब्द के प्रयोग से भी इनका गरुड़ का लीला विभूति गत वैकुण्ठ निवासी और वहीं जाना स्पष्ट है। त्रिपाद विभूति गत पर वैकुण्ठ का यहां पर कोई प्रसंग नहीं है।

३-जिस प्रकार का महा मोह गरुड़ को उत्पन्न हुआ था, उसकी संभावना लीला विभूति में ही है। पर विभूति में प्राकृत काम, क्रोध, मोह आदि विकारों की गम्य ही नहीं। और भी विस्तृत व्याख्या इस विषय की हो सकती है पर विस्तार भय से इतना लिख देना ही पर्य्याप्त समझा गया है।

इस प्रकार से यहां भी वैकुण्ठ' शब्द से तात्पर्य लीला विभूति गत वैकुण्ठ से ही है। त्रिपाद विभूति गत पर वैकुण्ठ का यहां भी कोई प्रसंग नहीं है।

बद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना।
बेद पुराण विदित जग जाना॥
अवध सरिस प्रिय मोहिन सोऊ।
यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ॥
जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि।
लोक समस्त विदित जग पावनि॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा।
मम समीप नर पावहिं वासा॥
अति प्रिय मोहिं इहां के बासी।
मम धामदा पुरी सुखरासी॥

इस प्रसंग में पहली चौपाई में 'बैकुण्ठ' शब्द देकर साथ ही उस बैकुंठ के लिये 'वेद विदित और 'जग जाना' शब्द दिया है। यहां पर ध्य न देने की बात यह है कि त्रिपाद विभूति गत पर बैकुण्ठ गोलोक, साकेत का विषय वेदांत तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों का रहस्य विभाग है। जिसमें उच्च कोटि के अधिकारियों का ही प्रवेश है।

भगति ज्ञान विज्ञाना विरागा, जोग चरित्र रहस्य विभागा।

वर्तमान युग के वैष्णवों के वृद्धाचार्य्य पूज्य पाद श्री रामानुज स्वामी, एवं चतुः संप्रदाय के अन्य वैष्णवाचार्य्य गण ही इस रहस्य का अनुभव करके सिद्धान्त रूप से विद्वज्जनों के मध्य में इस का स्पष्टीकरण कर सके हैं। तथा ब्रह्म विद्या का अभिमान रखने वाले बड़े २ विद्वानों को भी इस रहस्य को हृदयंगम करके उन्हें भगवान् के नित्य कैंकर्य एवं नित्य विहार में परायण बना सके हैं। अद्वैत सिद्धान्त के मानने वाले, शंकराचार्य्य के अनुयायी अनेक बड़े २ विद्वान् भी आज इस वैष्णव सिद्धान्त को

देख कर चकित होते हैं कारण कि कुछ देश काल की दुरवस्था के कारण भगवान् शंकराचार्य्य ने इन मार्मिक रहस्यों का स्पष्टी करण अपने समय में नहीं किया। फिर जगत् के सर्व साधारण लोगों को तो जानती ही क्या है। जो त्रिपाद विभूति गत नित्य लीला के रहस्य को समझ सकें। तात्पर्य्य यह कि यह वेद पुराणादि का रहस्य विभाग (धार्मिक गुह्य विषय) है। कोई स्थूल विषय नहीं है जो संसार जानता हो। अतएव त्रिपाद विभूति गत पर वैकुण्ठ के लिये विदित (प्रसिद्ध) तथा 'उग जाना' शब्द पाही नहीं सकते।

[अपूर्ण]

भक्ति में शक्ति

(ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम)

जिस प्रकार बादल में विद्युत् है, सूर्य में तेज है, चन्द्रमा में आह्लाद है, पत्थर में आग है, गन्ने में रस है इसी प्रकार भक्त में शक्ति है। भक्ति की शक्ति से सब कुछ संभव है। परन्तु वह होनी चाहिये यथार्थ में। चाहे किसी की हो। मातृ भक्ति, पितृ भक्ति, आचार्य भक्ति, गुरु भक्ति, भ्रातृ भक्ति, देश भक्ति, नरेश भक्त, महेश भक्ति किसी की भक्ति हो। यदि सत्यता के साथ है तो विचित्र शक्तिशाली है। यह भी प्रश्न हो सकता है कि कौन सी भक्ति श्रेष्ठ है। बहुधा लोग मातृ भक्ति को महत्व देते हैं। अनेकों अनेक भक्तियों का समर्थन करते हैं परन्तु जहां से भक्ति आरंभ होती है और जहां समाप्त होती है उनमें समाप्ति की अन्तिम भक्ति गरीयसी है। मातृ भक्ति से आरम्भ होती है और ईश्वर भक्ति में लय हो जाती है। इन में से ईश्वर भक्ति की शक्ति भी सब से उत्कृष्ट और परम आदरणीय है। नारद सूत्र में लिखा है 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' भगवान् में परम अनुराग होना ही भक्ति है। नारद जी स्त्री पुत्रादि के तुच्छ प्रेम को भक्ति नहीं मानते। वे तो भगवान में अनन्य अनुराग को भक्ति कहते हैं। है भी यही बात। सांसारिक नेह नाते सब बन्धन के हेतु हैं केवल भगवान् के नेह नाते ही सच्चे हैं। यहां पर एक परम भक्त गोस्वामि तुलसीदास जी का पद याद आगया, पाठक ! इस पद के भाव देखें, तुलसीदास जी ने क्या ही सुन्दर मोती पिरोये हैं:-

"नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं।
अंजन कहा आंख जेहि फूटै बहुतक कहौं कहां लौं॥"

अहा हा !! क्या ही मर्म की बात है। जितने भी जगत् के प्रिय से प्रिय नेह नाते हैं सब राम के हैं, अंजन कहा, अर्थात् संसार के नाते क्या नाते हैं जो आंख फोड़ने वाले, अज्ञान में डाल कर गिराने वाले हैं। वो अंजन, अंजन नहीं जो आंख फोड़े इसी तरह वे नाते, नाते नहीं जो कि संसार के हैं, नाते तो राम के हैं जो संसार के बन्धन काट कर जीव को अभीष्ट पद देते हैं।

पाठक तुलसीदास जी के भावों को समझ गये होंगे। जब ऐसी दृढ़ भक्ति हो जाती है तब ही भक्ति में आनन्द आने लगता है। ऐसी दशा न हो तब तक भक्ति में शक्ति उत्पन्न नहीं होती। जिस प्रकार दूध को बार २ बिलोने से घी निकल आता है, तथा दो पत्थरों के जोर से रगड़ने से अग्नि चमकने लगती है। इसी प्रकार अनन्य भाव से भक्त भगवान् के साथ क्रीड़ा करता है, कीर्तन, भजन द्वारा वश में करता है तब भक्ति की सिद्धि होती है। उसी भक्ति में शक्ति पैदा होती है। वहां भक्त में लज्जा, शंका, भय नहीं रहते। दुनियाँ पागल कहे

था और कुछ कहे उसे परवा नहीं। नामदेव मन्दिर में दर्शन करने गये थे, वहां कीर्तन हो रहा था। घी को आग दीखी घी पिघला, नामदेव जी भी कीर्तन करने लगे। और दिन तो झांझ बजाया करते आज सफर में थे वहाँ झांझ कहाँ थी। रोज की न्याई कमर पर हाथ डाला कि कमर में जूते बन्धे रहे थे। उन्होंने आंख मींचे हुये प्रेम में हाथ डाला था। लगे जूते ही बजाने। प्रेम में क्या नेम। परन्तु पुजारियों को बुरा प्रतीत हुआ। दो चार गाली दी और घसीट कर मन्दिर के पीछे बाहर डाल आये। नामदेव जी को मालुम भी नहीं, वे तो पहले के समान प्रेम में बिह्वल हुये कीर्तन कर रहे थे। अब देखो भक्ति की शक्ति। पुजारि आदि और भी सैंकड़ों भक्त कीर्तन कर रहे थे। परन्तु मन्दिर में बैठे हुये ठाकुर जी से नामदेव जी का कीर्तन देखे बिना न रहा गया। झट मन्दिर का द्वार नामदेव जी की ओर हो गया। सब लोग देख कर आश्चर्य चकित हो गये। कौन जाने किस की भक्ति कैसी थी परन्तु सच्ची भक्ति ने तुरन्त अपनी शक्ति दिखाई। यही थी भक्ति में अपूर्व शक्ति जो ऐसे मौके पर छिपी नहीं रह सकती।

सच्चे भक्त को संशय भी नहीं होता। वे प्रकृति के नियम को बदल देते हैं। बदल क्या देते हैं प्रकृति उनके सामने मात खा जाती है। मीरां जी को जब जहर का प्याला दिया तो उनको यह खयाल ही नहीं आया कि ये जहर है इससे मैं मर जाऊंगी। यदि उनको ये खयाल हो जाते कि मेरे मारने को जहर भेजा गया है मैं कैसे पीऊं, कहीं मर न जाऊं, तो वे पीती ही नहीं। क्योंकि जबर्दस्ती तो थी नहीं परन्तु उनकी तो दशा ही और थी, दिन रात भगवान् के प्रेम में पगी रहती थीं। सांसारिक विचार ही दिल से निकल गये थे। तो जहर कहाँ रहा उन्होंने तो अपने प्यारे भगवान् का चरणामृत समझ कर पान किया था। सो क्यों न चरणामृत ही का फल दे। धन्य है। ऐसे भक्तों को जो जहर हाथ में लेकर चरणामृत समझ पी लेते हैं। कहाँ यह अत्यन्त हद दर्जे की ऊंचाई का प्रेम, कहां हम तुच्छ भावों वाले, जो भक्ति में चमत्कार देखने की इच्छा रखते हैं। ऐसी भक्तों की अचिन्त्य कथाओं में विश्वास भी नहीं रखते। क्या चमत्कार देख सकते हैं। पाठक गण! जो भक्ति में चमत्कार या शक्ति देखने की दृढ़ इच्छा है तो आइये इस भक्ति के खुले मैदान में आइये। जब कीर्तन भजन से भाव शुद्ध हो जायेंगे तो आप ही भक्ति चमत्कार दिखायेगी। बिना भक्ति के मनुष्य में मनुष्यता की भी शक्ति नहीं। गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं:—

भक्ति हीन सोहत नर कैसे।
बिनु जल बारिद देखिय जैसे॥

अन्यत्र भी शास्त्र में स्थान २ पर भक्ति के गुण वर्णन किये हैं। विशेष कर कलियुग में तो साधन ही भक्ति माना है। 'कलौतु केवला भक्तिः'

अब विचार यह है कि ऐसी भक्ति किस प्रकार प्राप्त की जाय कि जो शक्ति शालिनी हो। इसके करने के क्या २ विशेष नियम हैं इत्यादि। प्रथम तो बात यह है कि इसका बीज बोया जाय। इसका सर्व प्रथम साधन सत्संग है। सत्संग से सारासार वस्तु का सम्यक् ज्ञान तथा भक्ति तत्व समझ में आयगा। जब सार का ज्ञान होगा तो असार के त्यागने को बाध्य होना पड़ेगा। जब असार छुट जायगा तो हृदय में श्रद्धा का अंकुर बढ़ने लगेगा। भक्ति की इच्छा भी बढ़ेगी। तो फिर भगवान् शंकराचार्य जी के वचन याद आयेंगे। 'कि दुर्लभं सद्गुरुरस्ति लोके' सद्गुरु की खोज की

जायगी। दृढ निश्चय से तुरन्त सद्गुरु के दर्शन होंगे फिर क्या है 'दर्शन होत मिटे दुःख द्वन्द्व' 'यदा सद्गुरु कृपा कटाक्षो भवति' जब सद्गुरु की कृपा होगी तो ताला खुलते देर न लगेगी। फिर भक्ति के महल में प्रवेश होगा। यदि दिल जगत् में है तो जगत् ही दीखेगा और जगत् से पीछा छुटना भी मुश्किल है। इसी लिये तो वेद भगवान् आज्ञा दे रहे हैं।

उत्तिष्ठत आप्रत प्राप्य वरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥

उठो! जागो! श्रेष्ठ गुरुओं की शरण में जाकर जानो, जैसे छुरे की पैनी धारा पर जाना कठिन है ऐसे ही यह भक्ति का रास्ता दुःख से बड़ी कठिनाई से पाने योग्य है, ऐसा विद्वान् लोग कह रहे हैं।

उक्त वेद मन्त्र में भगवान् प्रथम प्रत्येक प्राणी के लिये उठने जागने की आज्ञा दे रहे हैं फिर सद्गुरु की ओर इशारा कर रहे हैं कि प्राप्य वरान्निबोधत। इसी की पोषक दूसरी श्रुति मुण्डक की भी यही आज्ञा दे रही है कि:-

परीक्ष्य लोकान्कर्म चितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

ऐसे गुरु अधिकारी भेद से सब को यथा योग्य मार्ग दिखाते हैं सब को ही निज २ मार्ग में सिद्धि मिलती है। भक्ति का मार्ग बड़ा ही अनोखा है। जो इस पर चलने लगा है उसी को इसका भेद खुल गया। ध्रुव, प्रह्लाद जन्म से ही इस पर चले और इसकी शक्ति का विकाश करते गये। एक बार इस मार्ग में आइये फिर इसका तत्व खुलने लगेगा।

'बोलो भक्त और उनके भगवान् की जय'!

प्रेम प्रादुर्भाव के लक्षण

(ले० भक्तरत्न श्री मथुरा प्रसाद जी जयपुर)

गतांक से आगे।

शान्ति से लेकर भगवत् के गुण गायन तक जो लक्षण प्रेमी जनके गतांकों में वर्णन हो चुके हैं तदनन्तर "प्रीतिस्तद्वसतीस्थले" इका नम्बर है। प्रिय पाठक गण! स्वयं अपरिचित नहीं कि अपने प्यारे के निवास स्थान में मनुष्य की प्रीति उससे कम नहीं होती जितनी निज निवास स्थान से होती और होनी चाहिये। अब विचारणीय यह है जगदीश्वर परमात्मा का निवास स्थान तो समग्र संसार ही है। ऐसी कोई जगह या कोई वस्तु नहीं जहाँ परमात्मा न हो। परन्तु इस श्लोक में जो प्रीति परमेश्वर में निवास स्थान से कही गई है यह निराकार ब्रह्म के निवास के उद्देश से नहीं, किन्तु परमात्मा के सगुण साकार स्वरूप से वक्ता का प्रयोजन है। गीता में भगवान् ने साफ़ कह दिया है कि:-

अजोऽपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवामि युगे युगे॥

और "धर्म संस्थापनार्थायसंभवामि" इत्यादि वचनों से उस परिपूर्ण सर्वव्यापक निराकार ब्रह्म का आकार धारण करना सिद्ध होता है इसी को अवतार लेना कहते हैं। और अवतार भगवान् के पुराणों में २४ गिनाये गये तिन में भी दश प्रधान हैं। उन दश में भी राम और कृष्ण यह अवतार पूर्ण कला, पूर्ण शक्तिशाली हुए जिनमें श्रीरामचन्द्र महाराज का जन्म स्थान अयोध्या तथा श्रीकृष्ण चन्द्र जी का जन्म स्थल मथुरा और लीला स्थान

द्वारका यह तीनों पुरी परम पुनीत तथा निज धाम वैष्णवों के पूज्य और अधिक मान्य हैं। इन पुरियों की महिमा पुराणों में अधिक वर्णन की गई है। प्रेमियों को इनमें अतिशय प्रीति होती है। इसी लिये जितने अति उत्तम कोटि के प्रेमी भक्त हुए हैं इन्हीं पुरियों में उन्होंने निवास कर जीवन बिताया है। और उनसे बाहर किसी अन्य स्थान में उनको अनुराग नहीं होता इन स्थानों की रज देव गण भी शीस पर चढ़ाते हैं और इन धामों के निवासी परम शुभ गति के भागी होते हैं।

यहाँ तक शान्ति से लेकर प्रीति निवास स्थान तक प्रेमियों के लक्षण वर्णन किये गये। अब श्री निम्बार्क संप्रदाय के अनुयायी महानुभाव श्रीहरि व्यास जी महाराज के वर्णन किये हुए हरि शरणागत निज दासों के लक्षण भी ध्यान में रखने के योग्य हैं। इन महात्मा की कविता महा वानी करके प्रसिद्ध और भक्त मंडल में अति आदरणीय है।

विधि निषेध आदिक जिते कर्म धर्म तज तास।
प्रभु के आश्रय आवही सो कहये निज दास ॥

जो कोउ प्रभु के आश्रय आवै, सो अन्याश्रय सब छिटकावै।
विधि निषेध के जे जे धर्म, तिनको त्याग रहै निष्कर्म।
झूंठ क्रोध निन्दा तज देहीं, बिन प्रसाद मुख और न लेहीं ॥
सब जीवन पर करुणा राखै, कबहुं कठोर वचन नहिं भाखै।
मन माधुर्य रस माँहि समोवै, घड़ी पहर पल वृथा न खोवै।
सतगुरु के मारग पग धारै, हरि सतगुरु बिच भेद न पारै।
यह द्वादश लक्षण अवगाहैं, जे जन परा परम पद चाहैं ॥

इसके अनन्तर इन ही महात्मा ने दस पैड़ी यानी परमपद पर चढ़ने की दस सिढ़ियें बतलाई है–

जाके दस पैंडी अति दृढ़ हैं।
बिन अधिकार कौन तहां चढ़ि है ॥

पहले रसिक जन को सेवै, दूजी दया हृदय धर लेवै।
तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनि है, चौथी कथा अतृप्त हो सुनि है ॥
पंचमि पद पंकज अनुरागै, षष्ठी रूप अधिकता पागै।
सप्तमी प्रेम हिये बिरधावै, अष्टमी रूप ध्यान गुण गावै ॥
नवमं दृढ़ता निश्चय गहवै, दशमी रस की सरिता बहवै।

अब अग्रिम अंकों में उक्त महावानी का अर्थ प्रत्येक के लक्षण, हरि शरणागत निज दासों का निरूपण किया जायगा।

भगवद्भक्ति

(ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी

प्रेम निष्ठा।

प्रेष्ठो नित्यं समकर्मा श्रेष्ठो नित्यं विवेकिनाम्।
इष्टिष्ठो योग विन्तानां नेदिष्ठो ज्ञानिनां हि सः ॥

मंसाराम–महाराज! आज तो कृपया प्रेम निष्ठा के सम्बन्ध में कुछ वर्णन कीजिये, क्योंकि 'प्रेम बिना रीझे नहीं, नागर नन्दकिशोर!' ऐसी लोकोक्ति है और विद्वानों का भी ऐसा निश्चय है कि जब तक ईश्वर में पूर्ण अनुराग न होगा, तब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकि। युक्ति भी है

कि बिना प्रेम के किसी वस्तु के प्राप्त करने की इच्छा नहीं होती, जिस वस्तु में प्रेम होता है उसी वस्तु की इच्छा होती है और उसी की प्राप्ति के लिये यत्न किया जाता है। बिना प्रेम के लोक की ही कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती, तो ईश्वर की प्राप्ति तो बिना प्रेम हो ही कैसे सकती है? नहीं हो सकती, इसलिये प्रेम का स्वरूप प्रेम की अवस्थायें, प्रेम के साधन और फल विस्तार से वर्णन कीजिये और प्रेम निष्ठा के भक्तों की कथायें भी सुनाइये!

मस्तराम–भाई! प्रेम भगवत् का स्वरूप ही है, प्रेम निष्ठा भगवत् रूप है और जितनी निष्ठायें पूर्व में वर्णन की हैं, उन सब का सार और परिणाम यानी फल यह प्रेम निष्ठा है। इसके आगे कोई अन्य पदवी नहीं है कि जिसको प्राप्त करना पड़े, प्रेम निष्ठा प्राप्त हो गयी, तो सब कुछ प्राप्त हो गया, फिर कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता। तत्ववेत्ता जिसको जीवन्मुक्ति कहते हैं, वह जीवन्मुक्ति इस प्रेम के दृढ़ हो जाने का ही नाम है और जो कैवल्यमुक्ति के नाम से विख्यात है, वह भी इसी प्रेम का और प्रेम के दृढ़ हो जाने का नाम है। अब इस प्रेम के स्वरूप का विवरण करता हूं, ध्यान देकर सुन, शांडिल्य ऋषीश्वर ने अपने सूत्रों की भूमिका में पहिले यह सूत्र लिखा है।–'अथातो भक्ति जिज्ञासा।' अर्थ इसका संक्षेप से यह है कि भक्ति अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पदार्थों की देने वाली है, इसलिये इस भक्ति को जानना चाहिये। दूसरा सूत्र यह है–'सा परानुरक्तिरीश्वरे।' अर्थ इसका यह है कि ईश्वर में परम अनुरक्ति होने का नाम भक्ति है। अनुरक्ति अनुराग का, प्रेम का, प्रीति का अथवा स्नेह का नाम है। जब भक्ति को अनुरक्ति कहा, तो भक्ति का अर्थ दृढ़ प्रीति निश्चयभूत हो गया और इस प्रकार से प्रेम और भक्ति एक ही वस्तु हुए, नारद पंचरात्र में भी ऐसा ही कहा है कि भगवत् में अनन्य ममता होने को प्रेम कहते हैं और उसी का नाम भक्ति है।

मंसाराम–महाराज! यदि प्रेम और भक्ति एक ही वस्तु का नाम है, तो भक्ति का वृत्तान्त आप ग्रन्थ के आरंभ में ही कह चुके हैं, अब यहां उसका वर्णन फिर क्यों होना चाहिये? दूसरे यह कि जब सब निष्ठाओं का परिणाम यानी फल प्रेम निष्ठा है, तो दूसरी निष्ठाओं की श्लाघा जो आप पूर्व में कर चुके हैं, वह क्यों करी है, यह एक प्रेम निष्ठा ही पर्याप्त थी।

मस्तराम–भाई! ग्रन्थ के आरम्भ में जो भक्ति का वृत्तान्त कहा है, उसमें भक्ति की महिमा, भक्ति का स्वरूप और भक्ति की रीति बतायी है और इस प्रेम निष्ठा में यह बताया जायगा कि उस भक्ति के प्राप्त होने के पीछे उस भक्ति की क्या दशा होती है। दूसरी शंका का उत्तर यह है कि दूसरी निष्ठाओं की जो महिमा और बड़ाई कही है, वह सब सत्य है और ठीक है फिर भी विचार करने पर ऐसा निश्चय हुआ कि यह प्रेम निष्ठा सब निष्ठाओं की परिणाम दशा है। यदि इन निष्ठाओं के ऊपर विचार नहीं किया जाता, तो इस परिणाम निष्ठा के विचारने का संयोग ही नहीं आता। सिवाय इसके यद्यपि निष्ठायें बहुत हैं, फिर भी सब की परिणामदशा एक ही प्रकार की है। जैसे ध्यान निष्ठा वाला अपनी उपासना पर दृढ़ होकर उस पदवी को पहुंच जाता है कि कभी गाता है, कभी नाचता है, कभी हंसता है, कभी रोता है और कभी अपनी और पराई सुधि भूल जाता है। जब सखा, वात्सल्य, श्रवण और पूजा इत्यादि निष्ठा वाला परिणाम पदवी को पहुंचता है, तो उसकी भी ऐसी ही दशा होती है। इसलिये सब निष्ठाओं

की परिणामदशा एक है और उस परिणामदशा का वर्णन यदि सब निष्ठाओं में किया जाता, तो ग्रन्थ का विस्तार हो जाता और परिणामदशा का वृत्तान्त सब निष्ठाओं में लिखना पड़ता, इसलिये प्रेम निष्ठा अलग लिखी गयी।

हे मंसाराम! सब वस्तुओं का प्रारम्भ और परिणाम नियम है। यदि प्रेम निष्ठा न लिखी जाती, तो अन्त की पदवी जानी नहीं जाती। हे मंसाराम! इस निष्ठा का और सब निष्ठाओं का फल मुक्ति है, और सब निष्ठाओं की अन्तिम पदवी प्रेम है। यद्यपि पराभक्ति और प्रेम एक ही बात है फिर भी सब शास्त्रों में उस नियम दशा को भी प्रेम ही नाम धर के लिखा है कि जो प्रेम की विकलता भक्त पर बीतती है।

हे मंसाराम! प्रेम दो प्रकार से उत्पन्न होता है, एक तो भगवत् की कृपा से, जैसा कि भगवत् ने एकादश में कहा है कि हे उद्धव! गोपियों न तो गुरु से पढ़ीं, न उन्होंने तप किया, न यज्ञ इत्यादि कुछ किया, केवल मेरी कृपा से ही वे मुझ को प्राप्त हो गयीं। मीरां बाई और करमैती को भी भगवत् की कृपा से ही प्रेम स्वयं ही हुआ था, दूसरे भाव से प्रेम उत्पन्न होता है अर्थात् भगवत् का सच्चिदानन्द स्वरूप और भगवत् के गुण सुन कर प्रेम उत्पन्न होता है और उस प्रेम से द्रवीभूत होकर भक्त तदाकार और बेसुधि हो जाता है। जैसे कि विष्णु पुराण का वचन है कि अन्तर्यामी भगवान् के गुण सुनने से चित्त की वृत्ति भगवत् में लगानी चाहिये और इस प्रकार लगानी चाहिये कि जिस प्रकार गंगा का प्रवाह दिन रात चलता रहता है।

हे मंसाराम! यह भाव दो प्रकार है, एक तो भगवद्भक्तों के प्रताप से होता है। इस भाव का नारद जी ने प्रह्लाद और दक्ष के पुत्रों को और दत्तात्रेय ने राजा सुबाहु को और भरत ने राजा रहूगण को उपदेश किया था, जिससे तुरन्त ही उनको भगवत्स्वरूप साक्षात्कार हो गया था और अब भी विख्यात है कि कोई २ ऐसा सिद्ध भगवद्भक्त किसी २ को मिल जाता है कि एक घड़ी में भगवत् पद को दर्शा देता है।

दूसरा भाव साधन से प्रकट होता है, जैसे नारद जी ने भगवच्चरित्रों को सुना, उन पर आचरण और साधन किया, ऐसा करने से भगवद्भक्त और प्रेमी हो गये। इस भाव के चार भेद तंत्रशास्त्र में लिखे हैं. एक वह जो चित्त की वृत्ति सदा भगवत् में लगी रहे इसमें भी दो भेद हैं, एक वह कि जिसमें कभी संसार के विषय स्वाद की चाहना नहीं होती, जैसे कि प्रह्लाद, सनकादिक इत्यादि का भाव है। दूसरा वह कि जिसमें संसार के सुखों की कभी २ चाह हो जाती है, जैसे कि अर्जुन इत्यादि को। दूसरा यह कि प्रेम से समाधि की दशा होती है, जैसे कि शुकदेव इत्यादि को। तीसरे यह कि बड़ी खेंच तान से जब मन लगाते हैं, तब प्रेम की दशा उत्पन्न होती है, जैसे कि अक्रूर आदि को। चौथे यह कि मन में शोच और पश्चात्ताप होता है कि हमारा मन गोपिकाओं के समान भगवत् के प्रेम से पूर्ण हो, जैसे कि उद्धव और युधिष्ठिर आदि को।

मंसाराम-महाराज! प्रेम की दो दशा हैं, एक संयोग और दूसरी वियोग, इन दोनों में मैं आप से यह निर्णय करना चाहता हूं कि भगवत् प्रेम में भी वियोग की दशा होती है या नहीं। और यदि होती है, तो उसका क्या वृत्तान्त है?

मस्तराम-हे मंसाराम! भगवत् प्रेम में

अवश्य ही वियोग की दशा होती है, परन्तु विषयी पुरुषों के मनमुखी प्रेम के समान और संसारी विषय भोग के सम्बन्धियों के समान भगवत् प्रेम के वियोग की दशा दुःख देने वाली नहीं होती प्रत्युत भगवत् के प्रेम और चिन्तन को बढ़ाने वाली होती है। जिस प्रकार कि ब्रजचन्द्र महाराज के मथुरागमन के समय गोपिकाओं को विरह हुआ परन्तु वह विरह प्रेम का ऐसा भभकाने वाला हुआ कि गोपिकायें बेसुध हो कर भगवत् के नित्य विहार में जा मिलीं।

मंसाराम–महाराज! यह वृत्तान्त तो उन भक्तों के विरह का है, जिनको साक्षात् राम या कृष्ण के समय विरह हुआ परन्तु जिन लोगों को ध्यान से अथवा रूप गुण के श्रवण से भगवत् का प्रेम उत्पन्न हुआ अथवा होता है, उनको विरह होता है या नहीं होता।

मस्तराम–हे मंसाराम! उनको भी विरह अवश्य होता है, और उसके कई स्वरूप हैं, एक यह कि भगवत् के ध्यान और चिन्तन के समय जब गोपिकाओं के अथवा दशरथ महाराज और कौसल्या महारानी के अथवा नन्द यशोदा के अथवा दूसरे भक्तों के वियोग की सुधि आजाती है अथवा उनके वियोग की कथा सुनने में आ जाती है, तो उस समय जो दशा उन पर वियोग के समय बीती थी, वह ही इस भक्त पर बीतती है, किंचित् भी भेद नहीं होता। वियोग के चरित्र के सुनते समय विशेष करके सब को इस बात की परीक्षा होती है।

हे मंसाराम! जिस समय ध्यान की पक्वता होने लगती है, उस समय अतिचिन्तन और प्रेम की झलक से ध्येय रूप की शोभा का जो वियोग होता है, वह दशा भी प्रिय वल्लभ के वियोग की दशा के समान ही होती है और जब भगवत् का ध्यान और चिन्तन अनुक्षण रहने लगता है, तब भगवत् के साक्षात् दर्शन होते हैं अथवा उस भक्त को ध्यान का रूप साक्षात् रूप के सदृश हो जाता है। तब सर्वदा संयोग और वियोग की दशा प्रति दिन बीता करती है अर्थात् प्रारम्भ दशा से अन्तिम दशा तक संयोग और वियोग दोनों होते हैं।

मंसाराम–महाराज! बहुत से भक्तों ने संयोग की पदवी से वियोग की पदवी श्रेष्ठ लिखी है और वास्तविक में जो स्वाद वियोग में है, वह स्वाद संयोग में नहीं है, तब इन दोनों में कौन सा श्रेष्ठ है।

मस्तराम–भाई! बात तो यह है कि यदि वाद विवाद से लिखा जाय और श्रेष्ठता का निश्चय एक का दूसरे पर किया जाय, तो सैंकड़ों पोथियों में लिखने से भी इसका निर्णय न हो सके, क्योंकि अन्त में झगड़ा और वाद विवाद न्याय, पातंजल, कर्म शास्त्र, श्रुति और वेदान्त तक पहुंच जाता है और सिद्धान्त नहीं निकलता, इसलिये उस विस्तार से बच कर जो सब बातों का सारांश मिला है, वह बताता हूं कि प्रेम में वियोग और संयोग दोनों एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं, क्योंकि यदि सदा वियोग बना रहे और ध्यान में अथवा प्रकट में संयोग की आशा न हो तो प्रेम कभी उत्पन्न न हो और इसी प्रकार यदि सदा संयोग की दशा ही बनी रहे और वियोग का भय और शोच न हो, तब भी प्रेम कदापि न हो और प्रेम नाम उसी का है कि वियोग के पीछे संयोग और संयोग के पीछे वियोग हो, इसलिये संयोग और वियोग दोनों का सम्बन्ध है परन्तु वियोग में स्वाद विशेषतर है और प्रेम की पक्वता वियोग भाव से शीघ्र प्राप्त होती है, इसलिये बहुत से भक्तों ने वियोग की बड़ाई लिखी है।

हे मंसाराम ! यदि मुख्य अभिप्राय पर दृष्टि करी जाय, तो सब शास्त्र और भक्ति ज्ञान, वैराग्य आदि सब साधन केवल संयोग के निमित्त हैं। हे मंसाराम ! अब प्रेम की दशा और प्रेम का प्रकाश बताता हूं। सब दशाओं के जो दृष्टांत दिये जांयगे, उनको पढ़ कर यह न समझ लेना चाहिये कि ये दशायें पूर्वकाल में बीतती होंगी, क्योंकि ये दशायें सब भक्तों पर अब भी बीतती हैं और भक्त जिस समाज का चिन्तन करता है, उसी के तदाकार यानी तद्रूप हो जाता है। ये दशायें बारह हैं और कोई २ सूक्ष्मता से तीन दशायें अधिक करके पंद्रह दशायें कहते हैं। उन सब का नाम और उदाहरण नीचे दिखलाता हूं।

(१) उन्न-पहिली दशा का नाम उन्न है। जब प्यारे की सुन्दरता और गुणों को सुना, उससे मिलने की अत्यन्त चाह हुई, फिर वह किसी प्रकार दिखायी पड़ गया। उसके देखने के पीछे सिवाय प्यारे के अन्य किसी देखी सुनी वस्तु की सुन्दरताई आंखों में न समानी और यह आशा और चाह होनी कि यह प्यारा मेरी आंखों से क्षण भर भी अलग न हो। ऐसी दशा जो सच्चे भक्त पर बीतती है, उसका नाम उन्न है, जैसे कि रघुनन्दन स्वामी के जनकपुर पहुंचने पर यह दशा जानकी महारानी की हुई थी अथवा द्वारकानाथ के गुण सुन कर रुक्मिणी की अथवा गोपिकाओं की अथवा, अक्रूर जी की अथवा सुर्नाक्ष्ण की।

(२) यत-किसी बहाने से दूत ने अपने प्यारे के समाचार पूछने और उस पूछने के समय विरही भक्त पर जो दशा बीतती है अथवा प्यारे का वृत्तांत सुन कर जो हर्ष होता है अथवा प्यारा आया है और जान पहिचान नहीं है, इसलिये मिलना, बोलना, बतलाना नहीं हुआ हो और उसी की चर्चा होना कि यह कौन है और कहां से आया है, उस समय जो दशा होती है अथवा प्यारे की तरफ से कोई सन्देशा लेकर आवे, उसके साथ बात चीत करते समय जो गति होती है, उसका नाम यत है और यह दशा जल्प प्रजल्प आदि भेद से दस प्रकार की है और सब में नर्थार बातें हैं, ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं लिखी। इस यत दशा का दृष्टान्त यह है कि जिस समय उद्धव जी श्री ब्रजकिशोर महाराज का संदेशा लेकर ब्रज में पहुंचे, उस समय जो बात चीत हुई और भ्रमर के बहाने से गोपियों ने ब्रजचन्द महाराज की निठुरता और कृतघ्नता आदि का वर्णन किया अथवा जिस समय रघुनन्दन महाराज जनकपुर में पहुंचे, वहां की स्त्रियां उनको देख कर आपस में जो कहती सुनती हुई, वह यत दशा है।

(३) ललित-ललित का स्वरूप यह है कि प्यारे के देखने की उमंग होना, उमंग के तरंग में गुरु जनों की शिक्षा और ताड़ना को मन में लाना और बारम्बार देखने के लिये चाह होनी और लज्जा छोड़ कर देखने के हेतु पीछे हो लेना और नेत्रों पर देखने के पीछे गुरुजनों से और अपने साथ स्नेह करने वालों से लज्जा होनी, जैसे कि गोपिकायें जब ब्रजमोहन महाराज वन से आते थे, तब वे लज्जा और संकोच को छोड़ कर सास ससुर आदि का भय न करके देखने को दौड़ती थीं। यह ही दशा स्वयंवर के समय धनुष तोड़ने से पहिले जानकी महारानी पर बीती थी।

(४) दलित-दलित का रूप यह है कि किसी कारण से प्यारे का आंखों के सामने न आना, उसके वियोग में रंग का बदल जाना, नींद न आनी, आहार घट जाना, दुर्बलता और विकलता होनी, किसी वस्तु का न सुहाना, रोते २

बेसुध हो जाना, प्यारे का मनमें ध्यान करके तन्मय हो जाना और उस समय नवनीत के समान मन कोमल हो जाना, इस दशा का नाम दलित दशा है, जिस प्रकार कि गोपियों से रास के आरंभ में ब्रजकिशोर महाराज अन्तर्धान हो गये, उस समय भांति भांति का विलाप गोपिकाओं ने किया और जब ढूँढते २ हार गयीं और मनमोहन न मिले तो चरित्रों का गान करके गोपियाँ तन्मय हो गयीं। श्री जानकी महारानी के लंका में जाने और अशोक वाटिका में रहने के समय जो दशा बीती थी, वह दलित थी।

(५) मिलित-मिलित का स्वरूप यह है कि बहुत काल से प्यारे से वियोग हो और विश्लेषता की व्यथा के कष्ट से मन विकल और बेचैन हो कर भांति २ के मनोरथ और चाह किया करता हो, वह ही प्यारा बहुत काल पीछे मिले, उस समय जो मन की दशा होती है, उसका नाम मिलित है। जिस प्रकार ब्रजचन्द नटनागर महाराज रासलीला में अन्तर्धान हो गये थे और फिर अचानक गोपियों से आमिले, अथवा रघुनन्दन महाराज लंका जीत कर अयोध्या में आये और भरतादि वियोगियों को नवीन जीवन हुआ।

(६) कलित-कलित का रूप यह है कि जिस समय संयोग के आनन्द से मन द्रवीभूत हो कर प्यारे के प्रेम में डूब जाता है, उस दशा को कलित कहते हैं। यह दशा दो प्रकार की है, एक यह कि प्यारे से साक्षात् अर्थात् प्रकट मिल कर उसके देखने से अथवा वार्तालाप, लाड़, प्यार, भाव अथवा श्लेषण आनन्द हो। दूसरा यह कि ध्यान और चिन्तन में मिल कर जो चाहना हो, वह उस चिन्तन में ज्यों की त्यों प्राप्त हो और उससे आनन्द हो। ये दोनों प्रकार का संयोग परम आनन्द का देने वाला है। जैसे किसी गोपी को श्रीव्रजचन्द्र महाराज ने वन में अकेली पाकर अपने प्रेम भरे वचनों से और लाड़ प्यार से परमानन्द के अन्त को पहुंचाया और उस रस में बेसुधि किया, अथवा रासलीला के समय ऐसा वृत्तान्त विस्तार से रास पंचाध्यायी में लिखा है,

(७) ललित-प्यारे पर परम स्नेह के कारण से क्रोध आ जाना, प्यारे के दोष वर्णन करना, बहुत प्रेम के क्रोध से ओठों का फड़कना, शरीर का कांपना और उस क्रोध से मन का प्यारे के तदाकार हो जाना, इसको ललित कहते हैं। जैसे कि भ्रमर गीत में गोपिकायें अति क्रोध से कहती हैं कि हे भ्रमर! तू उसी कृष्ण की श्लाघा करता है कि जिसने रामावतार में बालि को व्याधे के समान होकर मारा कि जिस का मांस और चर्म किसी प्रयोजन का न था और जिसने प्रेम से आयी हुई रावण की बहिन का रूप बिगाड़ कर उसे न तो आप रक्खा और न अन्य के रखने योग्य रहने दिया और वामन अवतार में जिसने राजा बलि के यज्ञ को नष्ट किया। अथवा जिस प्रकार बनवास के समय लक्ष्मण जी क्रोध से कहने लगे कि आप क्या ब्राह्मणों की सी बातें कहते हैं कि वन में जा कर ऋषीश्वरों के दर्शन और तप करेंगे! मैं आप का किंकर हूं, मुझे, आज्ञा दीजिये कि शत्रुओं को यमलोक में भेज दूं। इसी प्रकार भरत जी के चित्रकूट पहुंचने पर लक्ष्मण जी को क्रोध आया था। यह ललित दशा है।

(८) चलित-देह त्याग के समय अपने प्यारे का चिन्तन करके प्रेम के कष्ट की दशा में यह मांगना की दूसरे जन्म में भी मुझे उसीका प्रेम हो। और वह ही मिले, इस का नाम चलित है, जैसे कि सती जी ने दक्ष प्रजापति के यज्ञ में देह

त्याग के समय शिवजी की चाहना करी अथवा बालि ने, अथवा राजा दशरथ ने अथवा शरभंग ऋषि इत्यादि ने।

(९) कान्त-प्यारे के चिन्तन से प्यारे का स्वरूप मन में प्रकट होना, मन की चाह के अनुकूल शृंगार इत्यादि करना और हंसना, खेलना, बोलना, बैठना, अपने मन की चाह पूरी करनी, सिवाय अपने प्यारे के अन्य का वृत्तान्त न सुनना, न अन्य को देखना और न किसी से बोलना, ऐसी जो दशा है, उसको कान्त कहते है। जैसे कई गोपी भगवत् के चिन्तन से बाहर की सब बातें भूल गयी और चिन्तन में जो परम आनन्द प्राप्त हुआ, उसमें योगियों के समान ज्यों की त्यों रह गयी, वियोग का दुःख तनक भी न रहा और बावली सी कभी आंखें खोल लेती थीं, कभी बन्द कर लेती थीं! हे मंसाराम! यदि विरही भक्त को अपने प्यारे के चिन्तन का सुख न हो, तो वह शोक के कष्ट से जीता न रहे और यदि अनुक्षण चिन्तन में मग्न रहे, तब भी थोड़े ही दिन जिये।

विक्रान्त-क्रान्त का एक अंग है, इसलिये उसकी गणना नहीं की है। जिस समय उपासक भक्त भगवत् के प्रेम के प्राप्त होने से अपने भाग्य की बड़ाई करता है अथवा अपने इष्टदेव अर्थात् भगवत् की बड़ाई, भगवत् के मिलने का आनन्द, उस आनन्द की बड़ाई और उसके मिलने की दुर्लभता वर्णन करता है अथवा अपने इष्टदेव से जिनकी प्रीति है, उनकी श्लाघा और उनके गुणों को कहता सुनता है अथवा अपने प्यारे के न मिलने और न देखने का शोच करता है, इनमें से कोई एक अथवा कई दशा प्रकट हों, उसका नाम विक्रांत है। जिस प्रकार भरद्वाज, अत्रि, वाल्मीकि आदि ऋषीश्वरों ने श्री रघुनन्दन स्वामी के देखने के समय अपने भाग्य को सराहा था अथवा ब्रह्मा, शिव और दूसरे ऋषीश्वरों ने भगवत् की महिमा वर्णन करी, अथवा ब्रह्मा जी ने ब्रह्म स्तुति में व्रज और गोपिकाओं की बड़ाई और भगवत् के प्रेम के मिलने की दुर्लभता वर्णन करी कि गोपियों की वे आंखें धन्य हैं, जो नन्दनन्दन शोभाधाम को देखती हैं।

संक्रान्त भी कान्त और विक्रान्त का एक अंग है, उसके वर्णन करने का प्रयोजन नहीं है।

(१०) विह्वल-विह्वल दशा का यह रूप है कि कोई गोपी कहती है कि देखो पहले जन्म में हम को श्रीकृष्ण महाराज का प्रेम न हुआ, इसलिये हमने यह देह पायी और हम को संसार के दुःख देखने पड़े। यदि कैवल्य मुक्ति में श्रीकृष्ण के प्रेम की अधिकता नहीं है, तो वह मुक्ति नहीं है किन्तु मृत्यु के समान है। अभिप्राय यह है कि यदि मृत्यु के समय भगवत् का प्रेम हो जाय, तो मृत्यु हजार जीवन के सदृश है और जिस मुक्ति में भगवत का प्रेम नहीं, वह मुक्ति हजार मृत्यु से निकृष्टतर है। किसी गोपी ने श्रीकृष्ण महाराज से मान करके उनके मनाने पर भी मान न छोड़ा, जब श्रीकृष्ण महाराज चले गये, तब शोच करके वियोग की दशा से विह्वल हुई और अपने शरीर और मान को धिक्कार करके शोक की पीड़ा और विरह से चिन्तवन में बेसुधि हो गयी।

संहत एक अंग विह्वल का है, उदाहरण का प्रयोजन नहीं है।

(११) गलित-गलित का यह रूप है कि प्यारे की सुन्दरता इत्यादि का चिन्तवन करके अथवा उसकी सुन्दरता देख कर गलाये हुए सोने चाँदी के समान मन का द्रवीभूत हो जाना, उसको गलित कहते हैं। जिस प्रकार कोई गोपी किसी

सखी को देख कर कहती है कि देखो कि इसी गोपीने एक बार श्रीब्रजकिशोर महाराज की शोभा सुन्दरता इत्यादि किसी से सुनी है, इस कारण से इसकी यह दशा है कि योगियों के समान मौन हो गयी है, न हिलती है, न डोलती है, कभी रोती है, कभी रोमाँचित होती है, कभी थकती है, कभी नाचती है, कभी गाती है और कहती है कि कब मैं उस प्यारे को देखूंगी। जब कि नन्दनन्दन की सुन्दरता के सुनने से यह दशा है, तो न जाने मन-मोहन के देख लेने के पीछे कैसी दशा होगी।

(१२) संतृप्त–संतृप्त यह है कि सच्चिदानन्द-घन पूर्ण ब्रह्म परमात्मा छबिसमुद्र श्यामाधाम में ऐसा किसी का मन लगा है कि जहाँ तहाँ उसी को देखता है और उस रूप अनूप में ऐसा बे सुधि और मग्न है कि तनक भी दूसरी ओर मन की वृत्ति नहीं जाती, दर से दीवार में वह ही प्यारा दिखायी पड़ता है कि जिसके निमित्त अनेकों जन्मों में अनेकों प्रकार के योग और अभ्यास और शुभ कर्म किये थे, इस दशा का नाम संतृप्त है और इन उपास-नाओं और निष्ठाओं का सार यही दशा है। इसी की बड़ाई में गीता में लिखा है कि जो सर्वत्र वासु-देव का देखता है, वह महात्मा दुर्लभ है। इसी अवस्था का समस्त गीता और भागवत में वर्णन है, इसी पदवी को शांडिल्य सूत्र में परानुरक्ति अर्थात् पराभक्ति के नाम से कहा है। इस भूमिका पर दृढ़ होने का नाम जीवन्मुक्त है और फल इस का परम यह है। एक परम भक्त इस प्रकार प्रार्थना करता है।

हे श्रीकृष्ण स्वामी! अन्तर्यामी! दीनवत्सल पतितपावन महाराज! जिस प्रकार शेषी भाव आप पर परिणाम को प्राप्त हुआ है, उसी प्रकार पतितपावन और अधमोद्धारण नाम भी आप पर समाप्त हैं और जिस प्रकार शेष नाम पर शेषभाव का अन्त हुआ है, उसी प्रकार अधम और पतित होने की पदवी मेरे ऊपर समाप्त है, फिर भी मेरी ऐसी दुर्भाग्यता है कि शेषजी को तो अनुक्षण समीपता प्राप्त है, और मैं इस जगत् के जाल में फंसा हुआ हूं। ऐसा होने हुए भी मैं अपने काम में चतुर और चौकस हूं, अर्थात् कोई पाप और अपराध ऐसा नहीं है कि मैंने न किया हो और न करता होऊं, और आपको अपने नामों का कभी स्मरण नहीं होता! कुछ चिन्ता नहीं, अब मैंने ग्रन्थों में लिखना आरंभ कर दिया है, कभी तो चित्त पर चढ़ूंगा! यद्यपि इस भान्ति का विनय अनुचित है, फिर भी आपकी ढील ने इस प्रकार का विनय करा लिया है, इस ढंग की कहलाई, लिखाई, ढिठाई क्षमा की जाय! आप का वचन है कि जो शरण आता है, उसको अभय कर देता हूं, बहुत काल हुआ आपके द्वार पर पड़ा हुआ हूं, फिर भी अभी तक सुनाई नहीं होती! यद्यपि ऐसा पक्का और दृढ नहीं हूं कि दृढ़ता के साथ पड़ा ही रहूं, फिर भी आप सब प्रकार जानते हैं कि आपके द्वार को छोड़ कर और किसी से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता! जब जो कुछ मेरे निमित्त होगा, तब आप से ही होगा, अन्य किसी से न होगा! थोड़े में विनय यह है कि किसी प्रकार उस रूप अनूप के चिन्तन में दिन रात लगा रहूं, जो रूप सब रूप और शोभा का सारभूत है, मेरे लिये यह ही सब कुछ है।

अपूर्ण

———

सरस सूक्तियाँ

(ले० पु० प्रतापनारायण (कविरत्न)

(१)

किसी को गाली देकर भी,
न लाओ आँखों में लाली।
करो मत अपना मन मैला,
भले ही सूरत हो काली॥

(२)

स्वच्छता जिसके मन में है,
भला वह काला रँग वाला।
बुरा वह बाहर से गोरा,
और जो अन्दर से काला॥

(३)

देश के हित में ही मरना,
मेरु को पकड़ हिलाना है।
पालना दुर्जन की करना,
साँप को दूध पिलाना है॥

(४)

कभी के कभी नहीं पड़ता,
भाग्य पर लोहे का ताला।
भला क्यों उसका बदरंगा,
प्रेम का जो पीता प्याला॥

(५)

कहो क्यों माया होगी तब,
मर्त्य की * काया की छाया।
अमर भी नहीं जानता जब,
मानिनी माया की माया॥

(६)

धनी लख धन की ढेरी को,
बजाता मद की भेरी है।
चाँदनी यहाँ चार दिन की,
अन्त में रात अँधेरी है॥

(७)

देख कर लोगों का आना,
वारती है उन पर मोती।
जान कर फिर उनका जाना,
दुरंगी दुनियाँ है रोती॥

(८)

यहाँ जब जीना दो दिन का,
व्यर्थ है फिर रोना-धोना।
भरा है आने-जाने से,
जगत का सब कोना-कोना॥

(९)

सजीली होकर भी दुनियाँ,
वेष में रहती नंगी है।
रंगीली होकर भी देखो,
कहाती है यह ‡ नारंगी है॥

(१०)

मौत ही देख थकावट को,
गोद में हमें सुलाती है।
हमारे मैले कपड़ों को,
पहनने ही वह आती है॥

* परतन्त्र

‡ नहीं है रंग जिसके।

अद्वैतामृत

विवेकाश्रम नामक एक यति थे जिन्होंने इस संसार सागर के अनेकों अधिकारी पुरुषों को मुक्ति का मार्ग बताया। वह यति संसार में अपने निवास के योग्य एक ऐसे मठ की खोज करते थे जहां उनका मन बहुत ही प्रसन्न रहे परन्तु उनको ऐसा मठ कहीं भी नहीं मिला उन्होंने इस जगत् में परिभ्रमण करते करते तिरासी लाख निन्यानवें हज़ार नौ सौ निन्यानवें मठ देखे। परन्तु उनमें उन्हें कहीं भी स्थिति नहीं मिली। इस प्रकार अनेक पर्वत, वन, नदी सागर आदि स्थानों को देखते वह पाँच जन्य नायक स्थान में आये। उस मठ में दो स्तम्भ हैं, प्रत्येक प्रकार की कामनाएँ पूर्ण होती हैं, नव द्वार हैं, जीवात्मा के निष्काम कर्म आदि आचारों की सिद्धि के योग्य है तथा ब्रह्म के साक्षात्कार का स्थान है। वह मठ समस्त पृथिवी आदि लोकों के उपभोगों की प्राप्ति के उत्कृष्ट साधनों से सम्पन्न है और बहुत जन्मों में किये गये पुण्यों से प्राप्त होता है। वह मठ जिस परमात्मा की उपासना से विद्वानों के चित्त शुद्ध हो जाते हैं उस जगन्मङ्गल मूर्ति भगवान् की आराधना के सर्वथा योग्य है। बहुत कहने से क्या है श्रेष्ठ संन्यासियों के निवास के योग्य पाताल, पृथिवी और द्युलोक भर में इस मठ से उत्तम और कोई मठ नहीं है। लोक लोकान्तरों में बार बार तथा निरन्तर आवागमन से पीड़ित होकर वह विवेकाश्रम उस मठको अपने योग्य समझ कर उसमें निवास करके तपश्चर्या करने लगा। वह यति घोर तपश्चर्या के करने से अत्यन्त कृश हो रहा था। उसके पास काम को उद्दीपन करने वाली चेष्टाओं से युक्त रति के समान एक अपूर्व सुन्दर नारी मन्द मन्द हंसती हुई आई। वह नारी पञ्चम स्वर में गा रही थी, पुष्पमाला और चन्दन से उसकी शरीरलता विभूषित थी; तपे हुये शुद्ध सुवर्ण के सदृश उसका रूप था, तथा मद्य की मस्ती से उसके नेत्र घूम रहे थे। दिव्य पुष्पों से गुथे हुये सुन्दर केशों के भार से उसका विलास बढ़ रहा था, जिसके प्रभाव से विष्णु के परम पद को पाने वाले मुमुक्षुओं को भी वह विमोहित कर रही थी। विवेकाश्रम का मुख कमल उस नारी को देख कर कुम्हला गया और अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त होकर वह मन ही मन में इस प्रकार विचार करने लगा:-

मैंने बहुत काल के पश्चात् अनेक कष्ट सहन करके इस स्थान को प्राप्त किया है यहां पर भी यह महा विघ्न कहां से आगया? वैराग तीर्थ जो मुझे प्राणों से भी प्यारा है वह भीरु इस स्त्री की उपस्थिति में कैसे ठहर सकेगा? मेरे और वैराग्य तीर्थ के अभाव में शमाख्य, दमाख्य तथा उपरमाख्य की स्थिति की तो कथा ही क्या है। ऐसी दशामें "मुमुक्षा" तपस्विनी भी यहां काहे को आवेगी? उसके न आने से यह 'मुक्ति' भी गई ही समझिये, हाय! उसके अभाव में हम सब आश्रय हीन हो जावेंगे। यह मठ तो हम विरक्त जनों के समाज के निवास का स्थान है यहां यह कौन धूर्त पिशाची सी आगई? "काष्ट की स्त्री को भी भिक्षु पाँव से भी स्पर्श न करे" इत्यादि वृद्धों के वचन हैं। तो फिर स्त्री के साथ एक स्थान में एकान्त में रहना तो दूर रहा। जिस पात्र में से घी निकाल लिया गया हो, वह पात्र भी अग्नि की समीपता से जैसे पिघलने लगता है ऐसे ही यति का यतिपन भी स्त्रियों की समीपता से नष्ट हो जाता है। जहां स्त्री की प्रतिमा हो यति को तो वहां भी नहीं जाना चाहिये चाहे वह जिताहार हो, बूढ़ा

हो, विरक्त हो या रोगी हो। जिस प्रकार विन्ध्याचल पर्वत पर विषवल्ली का वायु प्राणियों को पीड़ित करता है इसी प्रकार स्त्री के स्पर्श से दूषित वायु भी संन्यासियों को दूषित कर देता है। स्त्रियों के साथ वार्तालाप तो दूर रहा उनकी स्मृति भी संन्यासी के लिये मृत्यु के समान दुःखदायी है। ब्रह्मा, इन्द्र चन्द्र आदि दिव्य शरीर धारियों के भी सब अनर्थ स्त्रियों के ही कारण हुये हैं। फिर तुच्छ प्राणी की तो गणना ही क्या है। ऐसा यति तो दुर्लभ है जो राज्य को नरक के समान, स्वर्ण को मिट्टी के ढेले के समान, और स्त्री को मृतक के समान समझे। अतः यह स्त्री मेरे सम्भाषण करने के योग्य नहीं है। परन्तु दूसरा यहां पर कोई पुरुष नहीं जो इससे पूछे कि यह यहां क्या करना चाहती है। क्या यहां से वह जायगी या सदा रहेगी! इसलिये मैं ही इससे इसका मनोरथ पूछता हूं। जिनका मन प्रत्यगात्मा में मग्न है उन का यह विचारी क्या कर सकती है। स्त्री आदि विषय तभी तक बल करते हैं जब तक कि अन्तरात्मा में मनुष्य की दृढ़ प्रीति नहीं होती है। जैसे कि कामी पुरुषों का अपनी स्त्री में प्रेम होने से मातृ प्रेम नष्ट हो जाता है, ठीक इसी प्रकार आत्मा में प्रेम होने से विषय प्रेम नष्ट हो जाता है। स्त्री के कल्पित शरीर से आत्म-तत्ववेत्ता को क्या भय हो सकता है। क्योंकि जिस पुरुष को रज्जु में कल्पित सर्प का भय दूर हो गया है वह पुरुष उस रज्जु के सर्प से कभी डरता ही नहीं। पुरुष, स्त्री, नपुंसक आदि का भेद रूप अन्धकार तभी तक रहता है जब तक चिद्रूप सूर्य चित्त रूपी पर्वत पर उदय नहीं होता है। जैसे उदयाचल पर सूर्य भगवान् के उदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है इसी प्रकार आत्मज्ञान के होते ही भेद रूप अज्ञान नष्ट हो जाता है। जैसे भेड़ बकरियों का व्याघ्र पर बल नहीं चल सकता ऐसे ही वैराग्य तीर्थ के सहायक होते हुये मुझ विवेकाश्रम पर स्त्रियों के बल का प्रयोग नहीं हो सकता। इस प्रकार निश्चय करके वह अनुष्ठानसत्तम संन्यासी सामने खड़ी हुई उस सुन्दर स्त्री को दासी के समान समझता हुआ बोला:—

कासि कस्यासि ललने कुत्रत्या किंच वाञ्छसि।
नोचितास्मिन्मठे भाति स्थितिस्तव वरानने॥

हे ललने! तू कौन है? किसकी है? कहाँ की रहने वाली है? क्या चाहती है? हे वारानने! इस मठ में तेरा ठहरना उचित नहीं जान पड़ता जहां शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और समाधिस्थ संन्यासी अपने आत्मा से साक्षात्कार करते हैं, जहां मुमुक्षु श्रेष्ठ यति लोग प्रत्यगात्मा को देह, इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि से पृथक् जान कर उसका दर्शन करते हैं, जहाँ विद्वान् लोग वेदाध्ययन, यज्ञ, दान अनेक प्रकार के तप और उपवास आदि से आत्मज्ञान की कामना करते हैं और पण्डित जन इसलोक तथा परलोक के भोगों से विरक्त होकर जिस मठ में निवास करके असङ्ग ब्रह्म के विषय में श्रुतियों के तात्पर्य का निर्णय करते हैं, ऐसे सज्जनों के निवास के योग्य इस पाञ्चजन्य मठ में तेरा ठहरना उचित नहीं है।

सुविशाल नेत्रों वाली वह नारी विवेकाश्रम के वाक्यों को सुन कर क्रम पूर्वक उत्तर देने लगी हे भद्र! मैं तेरी बड़ी बहिन हूं, चित्त वृत्ति मेरा नाम है, तू मुझे नहीं जानता क्योंकि तू अभी उत्पन्न हुआ है। हे वत्स! जो जो मठ तू ने त्याग दिये हैं और अब जिस मठ में तू विद्यमान है उन सब की पालना करने वाली अधिदेवता मुझे ही जान। मैं मन को हरने वाले शब्द, रूप, रस आदि

समस्त विषयों को चाहती है। और उन शब्दादि को सम्पादन करने वाले शुभ कर्मों को भी चाहती है। मैं कर्मों के त्याग की इच्छा नहीं रखती और न उनके फलों को ही छोड़ना चाहती हूं। पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा को छोड़ कर घर घर भिक्षा मांगनी चाहिये ऐसी मति सर्वथा विचार से शून्य है। आरम्भ में होने वाले जात कर्म आदि संस्कारों का जिस वेद में विधान है, तथा जिस वेद का अध्ययन भी प्रथमावस्था में ही होता है और रमणीय घरों में अनेक विध धन धान्य आदि से यज्ञ आदि का अनुष्ठान करना जिस वेद में लिखा है वह कर्मोपासना काण्ड रूप वेद तो त्याज्य है और वृद्धावस्था में किये जाने योग्य संन्यास का जिसमें विधान है तथा जंगल में जिसका अध्ययन किया जाता है और भिक्षा रूप अर्थ का अनुष्ठान ही जिसमें विधान किया गया है वह ज्ञानकाण्ड रूप श्रुतिसमूह ग्राह्य है इत्यादिक मूर्खों की विपरीत मति है। ज्योतिष्टोम याग से स्वर्ग होता है यह तो गुड़जीह्वि का है और मुंड मुंडा कर और नंग धड़ंग होकर भीख मांगता फिरे यह वचन मुक्ति का देने वाला है इस प्रकार की कल्पना वे निर्भाग्य, दरिद्र, अनाथ और मूर्ख लोग ही किया करते हैं जिन्होंने पूर्व जन्म में सत्कर्म नहीं किये हैं। अहा! इन सिर मुण्डों को भिक्षा आदि से इतना महान् सौभाग्य प्राप्त हुवा है कि इनके कहने में आकर राजा लोग राज्यों को छोड़ कर जंगलों में चले गये। यदि संन्यासी लोग ऐसा कहें कि "अथ भिक्षाचर्यं चरन्ति इत्यादि श्रुति से भिक्षाचरण का विधान है तो श्येन, सन्दंश आदि यागों ने क्या अपराध किया है? वे भी तो श्रुति ने ही विधान किये हैं उन्हें इष्ट का साधन क्यों नहीं मानते और उनका भी अनुष्ठान क्यों नहीं करते? श्रौत और स्मार्त सब कर्मों को सर्वथा त्याग कर मुमुक्षु महात्मा बड़ा भारी धर्म कर रहे हैं जो घर घर भीख मांगते फिरते हैं। जो भिक्षा मांगते मांगते यदि इन्हें कुछ न मिले तो या तो भूख के मारे मर जाँय या कोई निन्दनीय कर्म चोरी आदि करना पड़े। वीणा और नारी मुख से गाये गये सुन्दर सुन्दर गीतों को सुनो, कोमल कोमल शय्या पर सोवो, स्वादिष्ट पदार्थों का भोजन करो, गले में फूलों का हार पहनो और यही चिन्तन करो कि यह सुख बार बार होवे।

विवेकाश्रम-हे चित्तवृत्ते तू विपरीत बुद्धि वाली है अतएव बहुत बक बक कर रही है। अज्ञानान्धकार के समूह को हटाने में करोड़ों सूर्यों के प्रकाश समूह भी समर्थ नहीं हो सकते तब और प्रकाशों की तो बात ही क्या है। अविद्या में डूबे हुवे पुरुषों को अविद्या ही अधिक प्रिय लगती है। क्या विष्ठा का कीड़ा खाण्ड की मिठास को कभी अनुभव कर सकता है? लोकालोक नामक पर्वत के अन्धकार वाले भाग में जो प्राणी रहते हैं वे प्रकाश वाले भाग के सुवर्ण आदि पदार्थों के रूपों को क्या जान सकते हैं? यदि कोई अज्ञानी तत्वार्थ को जान सकता है तो बहरा पुरुष भी वीणा और कण्ठ से उत्पन्न हुवे स्वरों को समझ सकेगा। यदि अत्यन्त अज्ञानी पुरुष ब्रह्म के स्वरूप को साक्षात्कार कर सकता है तो कछुए का बच्चा भी अपनी मा के दूध के रस को जान सकता है। अज्ञान के कार्य इन शरीरादिकों में, आत्म बुद्धि वाले पुरुषों को तत्व का गन्ध भी दुष्प्राप्य है। लहसुन खाने वाले भील क्या कपूर की सुगन्ध को जान सकते हैं? आध्यात्मिक, अधिदैव और आधि भौतिक रूप तीन प्रकार के ताप से सताये हुवे पुरुषों को तत्वच्छाया का सुख कहाँ! सूर्य भगवान्

के रथ में जुते हुये घोड़ों को शीत स्पर्श की प्राप्ति कहाँ ? हे अमद्र चित्तवृत्ते ! इन कारणों से विषय सम्बन्धि आग्रह को छोड़ कर तू मेरे वचनों पर ध्यान दे। सुख रूप ईश्वर का आलिंगन करके भी तू दुःख दायी विषयों के संग को चाहती हुई लज्जित क्यों नहीं होती ? सत्, प्रिय, अनुरक्त (सर्वत्र ओत प्रोत) इस नित्य आत्मा के होते हुये मिथ्या और अनित्य विषयों का सेवन मत कर। जैसे क्षीर सागर की मछली क्षार सागर के जल से तृप्त और प्रसन्न नहीं होती, इसी प्रकार आत्मानन्द समुद्र में निमग्न होकर तू इन्द्रिय जन्य तुच्छ सुखों से क्यों कर प्रसन्न और तृप्त होती है ? जब तू आनन्द सागर आत्मा में डुबकी लगा कर प्रति दिन ऊपर और नीचे आती है, तब फिर विषयों से और क्या चाहती है ? तेरा आत्मा ही सुख रूप है, आनन्द रूप आत्मा में अध्यस्त विषय सुख रूप हाँ हैं किन्तु अल्पमात्र सुख के हेतु हैं। यदि अल्प सुख को छोड़ कर किसी अन्य महा सुख को प्राप्त करने की तेरी इच्छा है तो आत्मसुख को ग्रहण कर और विषयों से उत्पन्न हुये सुखों को त्याग दे। यदि तू विनाश रहित सुख की इच्छा रखती है तो देहत्रय रूप उपाधि को नाश करके अक्षय आत्म सुख को स्वीकार कर। अन्तर्विद्यमाना तू अन्तःस्थ आत्म सुख को पाकर बाहर के विषयों की चिन्ता क्यों करती है ? वह सुख रूप, आनन्द का प्रकाशक तथा चेतन आत्मा तेरे हाथ में ही उपस्थित है। अतः हे मूर्खे ! विषय जन्य सुखों में फिर भी तेरी इच्छा क्यों होती है ? जिस आत्मा की कृपा से तुझे विषय जन्य सुख प्रतीत होता है उस आत्मा के सुख को छोड़ कर तू और क्या ढूँढती है ? जैसे पशु गुड़ को छोड़ कर भूसे को ही उत्कण्ठा पूर्वक चाहता है उसी प्रकार तू आत्म सुख को छोड़ कर विषयों को क्यों चाहती है ? अन्त में विषय सुख को नीरसता को देख कर भी जो दुर्मति पुरुष फिर विषयों की इच्छा करता है वह मनुष्य नहीं है किन्तु पशु है। हा कष्ट। विषय की कामना से कुतिया के समान तू इधर उधर क्यों भटक रही है। हे चित्तवृत्ते ! तू आत्मानन्द को पाकर शान्त हो जा। जैसे दुष्ट पुरुष दूसरे के गुणों को छोड़ कर केवल दोषों पर ही ध्यान देते हैं ऐसे ही हे चित्तवृत्ते ! तू भी आत्मा को छोड़ कर विषयों पर ध्यान रखती है। बहुत कहने से क्या लाभ है मैं तुझसे यही कहता हूं कि आत्मानन्द से परिपूर्ण हो कर तू शान्ति को प्राप्त हो और मुझ पर कृपा कर। यह विषय नियम पूर्वक सुख के देने वाले नहीं हैं क्योंकि प्राप्ति या अप्राप्ति में प्रायः दुःख ही देते हैं। कुरंग, मातंग, पतंग, भृंग और मछली यह अपने अपने एक एक विषय के वशीभूत हो कर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। तब इस पुरुष की क्या अवस्था होगी जो पांचों इन्द्रियों से पांचों विषयों को भोग रहा है। हे चित्तवृत्ते ! इस लिये इस संसार दुःख की औषध जो अनन्त तथा सर्वोत्तम आत्म सुख है उसको पान करके तू स्वस्थ होजा।

अपूर्ण

भिक्षा

(ले० "साहित्यरत्न" पं बाबूलाल भार्गव)

नाथ ! चले हो आज सोचकर,
पाऊंगा वैभव-सन्मान।
किंतु भिखारिन हुई, पुरातन,
पूजा कहां रखी ? भगवान !

योग-साधन

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी)

५५८. जप द्वारा धार्मिक संस्कारों की अतीव वृद्धि की जा सकती है। जिस प्रकार एक जहाज़ द्वारा समुद्र को पार कर सकते हैं इसी प्रकार पवित्र आत्माओं के सत्संग से आप संसार रूपी समुद्र से पार हो सकते हैं।

५५९. ओ३म् का जप तथा उस पर विचार एक महान सत्संग है। पुराने बुरे संस्कार इससे नष्ट हो जावेंगे। सदैव ओ३म् का जप करिए यह गुरु मंत्र है।

५६०. जीवन्मुक्त आत्माएं ईश्वर में लीन हो जाती हैं इस कारण उनमें ईश्वरीय शक्तियां तथा आनन्द उत्पन्न होजाते हैं वह सांसारिक आनन्द में लीन नहीं होते उनके हृदय में सदा आत्मानन्द प्रकाशित रहा करता है।

५६१. जीव ब्रह्म एक होजाने पर आवागमन का भय जाता रहता है क्योंकि वह तो स्वतंत्र है। संसार तथा अपनी स्थिति उसे भ्रम मालूम होता है यद्यपि इनकी स्थिति को वह हटा नहीं सकता उनकी स्थिति उसे धोके में नहीं डाल सकती।

५६२. अग्नि घास के ढेर को जलाकर स्वयं नष्ट होजाती है इसी प्रकार ब्रह्मज्ञान संसार को असत्य दर्शाकर स्वयं नष्ट हो जाता है।

५६३. जिस प्रकार छोटी झाड़ में अग्नि लगने से समग्र जंगल जल जाता है उसी प्रकार बुद्धि की ज्योति जब हृदय में उदय होती है तो सब कर्म नष्ट होजाते हैं।

५६४. विद्या अविद्या को नाश करती है। अविद्या के नाश होने से चित्त की विक्षेपता नाश हो जाती है।

५६५. ब्रह्म भाव में संसार का अस्तित्व नष्ट नहीं होता वरन यह भाव कि संसार ब्रह्म से भिन्न है नष्ट हो जाता है और नवीन भाव कि जीवों के साथ संसार ब्रह्म से पृथक नहीं उत्पन्न होता है; इस विचार को ध्यान पूर्वक अवलोकन कीजिए। सब ब्रह्म है, सब एक है।

५६६. सब से प्रेम कीजिए सब के साथ उदारता का व्यवहार कीजिए। निष्काम सब की सेवा कीजिए। भविष्य की चिन्ता न कीजिए। सब से नम्रता का व्यवहार कीजिए। वेदान्त तथा धर्म्म शास्त्रों का अध्ययन कीजिए। इससे ब्रह्म भाव उदय होगा।

५६७. नम्रता, उत्साह, बलवती इच्छा, आत्म-विश्वास, क्षमा यह गुण साधक को अपने हृदय में धारण करने चाहिए। प्रेम, नम्रता तथा दया से आप ससार को जीत सकते हैं।

५६८. सभ्यता, उदारता, प्रेम तथा सूक्ष्म बुद्धि में चार गुण उस मनुष्य में पाए जाते हैं जिसने कि आवागमन से मोक्ष पाने के लिए पृथ्वी पर मानव लोक में अन्तिम जन्म लिया है। ऐसे महानुभाव के समीप अगणित मनुष्य आकर्षित होंगे।

५६९. जो साधक स्वभाव के दास हैं वह स्वतन्त्रता की साधना नहीं कर सकते। जिह्वा आपकी महान शत्रु है, यदि आप जिह्वा को अपने वश में रख सकते हैं तो आप की कुल इन्द्रियां आपके वश में रहेंगी।

५७०. परमात्मा सब का आदि मूल है। हमारे प्राण, इन्द्रियां और आत्मा सब उसी से निकले हैं और अन्त को उसी में लय हो जावेंगे इस भावना से अपनी समस्त क्रियाएं और चेष्टाएं उसी के अर्पण कर दो।

५७१. वही सब धार्मिक नियमों का आचार्य है, वही समस्त भूत प्राणियों का राजा है, वही चौदह लोकों का बनाने वाला, वही संसार का रक्षक, वही पुण्य कर्म्म व यज्ञों का पोषक, साधु सन्तों का सहायक और सब का पिता है।

५७२. वही पुरुषोत्तम, ज्योति स्वरूप, दयालु, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, विश्व का नियन्ता, सर्व व्यापक, परिपूर्ण, अन्तर, बाहर, ऊपर नीचे और सब दिशाओं में पूर्ण और एक रस अखण्ड है।

५७३. ऋषि यम राज को यम नहीं कहते वह तो आत्मा को ही यम कहते हैं। जिसने अपने आपको वश में कर लिया है उसका यमराज क्या करेगा?

५७४. जो पदार्थ वर्तमान काल में स्थित है वह भूत में भी था और भविष्य में भी अवश्य होगा।

५७५. यह संसार विरोध का बना हुआ है। जिस काम के करने से भले आदमी को लज्जा आती है बुरा आदमी उस काम के करने से प्रसन्न होता है। वेद कहता है "काम करो परन्तु उसका फल त्याग दो"

५७६. शंकराचार्य जी की मानसिक पूजा यह है "अय मेरे स्वामी शिव तू मेरा आत्मा है, मेरी बुद्धी तुम्हारी स्त्री (पार्वती) है। मेरे प्राण आपके सेवक हैं, मेरा शरीर आपका मन्दिर है। मेरे भोग तुम्हारी पूजा है। मेरी निद्रा समाधि है। मेरी गति तेरी प्रदक्षिणा है। मेरी वाणी तेरी स्तुति है। जो २ कर्म मैं करता हू वह सब आपकी पूजा है।

५७७. तलवार की तेज धार या क्रोधित सांप इतना दुःख दाई घाव नहीं करते जितना चित्त में रहने वाला क्रोध।

५७८. तुम परमात्मा से उसी समय प्यार कर सकते हो जब स्त्री, पुत्र और संसारी पदार्थों के झूठे मोह का त्याग करदो। यह शरीर तुम्हारा साधन मात्र है परन्तु तुम स्वयं शरीर नहीं हो।

५७९. इच्छाएं और अहंकार यह दो दीवारें हैं जो तुमको परमात्मा से पृथक् करती हैं।

५८०. सहन शीलता सबसे उत्तम गुण है। इससे आत्मिक बल बढ़ता है। यह साधक का बड़ा गुण है जो उस के ज्ञान में सहायक होता है इस गुण से मनुष्य को बहुत आनन्द मिलता है परन्तु इसमें एक ही दोष है कि सहन शील आदमी को लोग असमर्थ व कायर पुरुष कहने लगते हैं

५८१. जो पदार्थ दूर से सुन्दर व मन मोहक दिखाई देते हैं वह भोगने में उतने अच्छे प्रतीत नहीं होते मन मनुष्य को धोखा देता है। दूर से वस्तुएं पदार्थ चित्ताकर्षक दिखाई दिया करते हैं।

५८२. जो आदर, मान के इच्छुक होते हैं वह उन लोगों के स्नेह में फंस जाते हैं जो उनका आदर मान करते हैं। साधक इनके चक्र में आकर गिर जाता है। इससे मिथ्या अहंकार व अभिमान का नशा होजाता है नम्रता व अपमान से चित्त शुद्धि व तपस्या होती है।

५८३. मिथ्या अहंकार व अभिमान का त्याग करके नम्रता व विनय को बढ़ाना चाहिए।

५८४. भूतमात्र पर दया रक्खो, सब जीवों से प्रेम करो, किसी से घृणा मत करो, सत्य बोलो, विषय विकारों के आधीन मत हो।

५८५. कुसंग का त्याग करो, काम वासना, क्रोध, ईर्षा आदि को निरन्तर यत्न से दूर करो। तुमको शान्ति, आनन्द और अमर पद की प्राप्ति होगी।

५८६. परमात्मा नामकारी है। वह दुष्ट कर्म करने वाले को शिक्षा देने और सुधार करने के लिए दण्ड देता है। वह यह नहीं चाहता कि पुत्र

इन बुरे कर्मों को फिर करो। यह उसकी दया है, यह उसका प्रेम है।

५८७. यदि तुम समस्त सृष्टि के महाराजाधिराज भी हो जाओ तो उस समय तक तुमको वास्तविक शान्ति व आनन्द प्राप्त नहीं होसकता जब तक कि तुम चिन्ता, फिकर, भय लोभ, कामवासना और इच्छाएं हैं। हजार प्रकार की चिन्ताएं और सैकड़ों प्रकार के भय केवल अज्ञान ही को ग्रसित कर सकते हैं केवल आत्मिक ज्ञान से ही शान्ति, और अमरत्व की प्राप्ति होसकती। इसलिए माया को विजय करके आत्मा की प्राप्ति करनी चाहिए। आत्मा की प्राप्ति ध्यान द्वारा ही सम्भव है।

५८८. सत्य ही ब्रह्म है। सत्य से जगत का प्रादुर्भाव हुआ है, सत्य मे ही स्थिति है और सत्य मे ही यह लय होजावेगा। सत्य का साक्षात करो, सत्य ब्रह्म है।

५८९. सब कर्म आनन्द के लिए ही किए जाते हैं। आनन्द अच्छे कर्मों से प्राप्त होता है। आनन्द आत्मा का गुण है। आत्मा आनन्द स्वरूप ब्रह्म है।

५९०. ध्यान करो और अपने आपको पहचानो तुमको अपनी कमजोरियों का पता लग जायगा जो चित्त में विकार हैं उनका ज्ञान होजावेगा। तुम उनको दूर करने के समर्थ हो सकोगे।

५९१. सांसारी पदार्थों की तृष्णा रखना सब से अधिक पाप है। सच्ची प्रार्थना हृदय से होती है। प्रार्थना मनुष्य को परमात्मा के सच्चे प्रेम गूँथ देती है।

५९२. पक्षी की भान्ति स्वतंत्र बनो। कल का ख़याल मत रक्खो। परमात्मा सबको भोजन वस्त्र देता है। अज्ञानी पुरुष विश्वास नहीं करते।

५९३. यदि पति धार्मिक हो और स्त्री सांसारिक हो तो आपस मे बड़ी खींचा तानी रहती है। वह गृहस्थ जीवन का आनन्द नहीं भोग सकते। यदि एक पश्चिम दिशा में जाना चाहता है तो दूसरा पूर्व दिशा की ओर खींचता है। उनमें इसी प्रकार रस्सा कशी होती रहती है।

ब्रजमंडल की गोचर भूमी

४५०००) का क्या हुआ !

(ले० श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी मुसी)

ब्रज से मेरा सम्बन्ध बाल्य काल से है। १०-१२ वर्ष से जब मैं मथुरा से श्री वृन्दावन को जाता हूं, तब तब मथुरा से १ मीलकी दूरी पर श्री वृन्दावन की सड़क पर एकगौशाला को देखता हूं। उसपर गौओं के बड़े सुंदर चित्र बने हुए हैं और भगवान् गोपाल कृष्ण उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर रहे हैं। गौचर भूमि के लिये जमीन खरीदने की अपील भी उस की दीवार पर लिखी हुई है। अब तो शायद वे शब्द मिट गये हैं किन्तु ८-१० वर्ष पहिले मैं पढ़ा करता था, कि वृन्दावन से मथुरा तक ४-५ मील लम्बा जंगल गौचर भूमि के लिये खरीदा जायगा और उसके लिये शायद तीन लाख रुपये की अपील थी। पूज्य मालवीय जी और स्वर्गीय श्री हासानंद चम्मां जी का नाम भी लिखा था तब उस गौशाला में कुछ गौएं भी रहती थीं और दोचार नौकर भी थे। अब जहां तक मुझे याद है। उस गौशाला में गौएं नहींके ही बराबर हैं। मकान भी चारों ओर से टूट फूट गया है और शायद कोई स्थाई नौकर भी वहाँ नहीं रहता। वह गौशाला ऐसे मौके पर है कि इच्छा न होने पर भी

यात्री वृन्दावन जाते हुए उसे बिना देखे नहीं रह सकते। उसकी ऐसी दुर्दशा सोचकर मैं अपने मन को समझा लेता था कि शायद रुपये इकट्ठे न हुए होंगे और यह काम ज्यों का त्यों ही रुक गया होगा।

इधर थोड़े दिनों से पं० मूलचन्द जी मालवीय मेरे पास कई बार आये हैं। उनका कहना है कि उस गोचर भूमि के निमित्त ४५०००) रुपये कलकत्ते के सेठ घनश्याम दास ताराचन्द जी के यहाँ जमा हैं। उन्होंने काशी के "आज" में पूज्य मालवीय जी के नाम एक पत्र भी प्रकाशित कराया है, कि वे इस रुपये को अतिशीघ्र गोचर भूमि के लिये उपयोग में लावें। उन्होंने कई बार मुझसे भी आग्रह किया है कि तुम भी इस सम्बन्ध में लिखो, मैंने उनसे कहदिया कि मुझ जैसे निष्किञ्चन साधारण पुरुष की सुनवाई कौन करेगा। पत्रों में छप भी गया तो पू० मालवीय जी के कानों में यह बात क्यों पहुंचने लगी और पाठक भी मुझ से जैसे व्यक्ति की बात पर ध्यान क्यों देने लगे। किन्तु उनका आग्रह अब तक जारी ही रहा। उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं इस पत्र द्वारा पाठकों से प्रार्थना करता हूं कि नगाड़ खाने में मेरी तूती जैसी आवाज का यदि कुछ उपयोग हो सकता है तो वे इस विषय में ध्यान दें। जो भाई सीधे मालवीय जी को लिख सकते हों वे इस सम्बन्ध में उनसे लिखा पढ़ी करें और जो इस विषय का आन्दोलन कर सकते हों वे इसका आन्दोलन करें। यदि सच मुच में व्रजमंडल की गोचर भूमि के लिये ४५०००) रुपये जमा हों तो उनका उपयोग शीघ्र से शीघ्र होना चाहिये। पहिले जो जमीन एक लाख में भी नहीं मिल सकती अब वह पचास हजार से भी कम में मिल सकेगी। आशा है पाठक मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान देंगे।

श्रीकृष्ण छवि

(रचयिता श्रीमती व्रजकुमारी, 'प्रभाकर" आश्रम)

शत कोटि मनोज के रोज पड़ें सु सरोज लजै लख श्याम निकाई ॥ १ ॥
मीन मृगा अरु खंजन लोचन कोर पै एकहुं बार बिकाई ॥ २ ॥
फल को फूल कात धौं मूल सुसीन दुकूल सौं बिज्जु लजाई ॥ ३ ॥
अकलंक मयंक शरद को लाजत आनन की लख सुन्दरताई ॥ ४ ॥
कदम्ब की छांह प्रिया गल बांह करें बन मांह सुर बंशी बजाई ॥ ५ ॥
मुख बेनु दिये संग धेनु लिये ब्रज रेणु सुशोभत शीश चढ़ाई ॥ ६ ॥
सिर मोर पखा संग गोप सखा जिन वेद कथा नित नेति निमाई ❋ ॥ ७ ॥
सोई ब्रह्म अनूप किय भूप को रूप सु ब्रज मंडल में नर लीला दिखाई ॥ ८ ॥
हिये बनमाल सुगुम्फित लाल तेंहि देखि मृणाल पयोधि महं धायो ॥ ९ ॥
उपमान केहि अनुमान जबहि 'व्रज" रूप न मारको मार मनायो ॥ १० ॥

❋ निमाई-निर्माण

आदर्श स्त्री जीवन

(ले० श्रीमती वृजदेवी)

अहा ! कलियुग की गति बड़ी विचित्र है, जो भारत एक समय सर्व देशों में शिरोमणी था, और जिस भारत में सत्य धर्म स्वतंत्रता की पताका फहरा रही थी वही भारत आज अन्य देशों से पददलित होरहा है। इसी भारत में रत्न रूपी वीर विदुषी प्रतिव्रता धर्म परायणा ललनायें होचुकी हैं जिनका भारत को आजतक गौरव है। और उनकी विमल कीर्ति आजतक गाई जारही है। उन बालाओं में सत्य दया धर्म कूट २ कर भराहुआ था, वे दृढ प्रतिज्ञ, नीतिज्ञ सुशील होती थीं। माताओं से सुन्दर शिक्षा प्राप्त करती थीं आज उनकी जीवनी पढने पढाने से सुन्दर शिक्षा मिलती है। उन देवियों की हम कहां तक प्रशंसा करें कि जिनकी पतीव्रत शक्ति से सूर्य भी स्थिर होगया था और जिन्होंने तप के प्रभाव से अपने मृत पति को यमराज से छुड़ालिया था। और वीर स्त्रियां भी हो चुकी हैं कि जिनकी वीरता उत्तम व सराहनीय है। देखिये ताराबाई का नाम प्रसिद्ध है किस तरह से उसने लड़ाई में विजय पाई और दुर्गावती नामक राजपूतनी ने बड़ी बहादुरी के साथ लड़कर अपने देशकी विजय पाई। एक जीयाराणी हो चुकी है जिसने १५ वर्ष की उम्र में किस धैर्य को धारण कर युद्ध किया और अपने पिता को कैद से छुड़ालाई। और भी अनेक हो चुकी हैं जैसे कि लक्ष्मी बाई अहिल्याबाई, पद्मनी, सुन्दरी, संजकता इन्होंने अबला होनेपर भी यवनों को हरादिया था और अपने बाहुबल से दान्तखट्टे किये थे मगर सोच है दुःख है कि आजकी बालायें बड़ी भीरु हैं कायरता से भरी हुई हैं आज उन्हीं की दशा देखकर नये दुःख का सञ्चार होता है। आज वे अपना न अपनी प्यारी सन्तान का कल्याण करसकी हैं। देखिये इसी भारतवर्ष में कौशल्या जो कैसी नीति शास्त्र जानने वाली होचुकी है और सुमित्रा सदृश पुत्र को उपदेश देनेवाली होचुकी हैं। द्रोपदी सदृश पतिव्रता जो कि राजा की पुत्री राजा की स्त्री तब भी अनेक संकट आये और उन संकटों में धैर्य रखकर जीवन बिताया और धर्म से विचलित न हुई सीता और द्रौपदी में वह शक्ति थी की चाहती तो एक दृष्टि में सबका विनाश कर सकी थीं मगर उन्होंने एक आदर्श जीवन कर दिखलाया कि स्त्री को ऐसी पतिव्रता होना चाहिये और अनेकानेक आपदा आने पर भी धर्म से न गिरना चाहिये। सावित्री ने सत्यवान को एकबार वर लिया था जब उसके पिता अश्वपति को मालूम हुआ कि सत्यवान की आयु अब १ साल की शेष है तब उसने सावित्री से कहा पुत्री तुम दूसरा वर खोजलो मगर सावित्री तो धर्म को जानने वाली थी उसने नहीं माना, और सोचा कि आज पिता स्नेह वश मुझको धर्म विरुद्ध उपदेश कररहे हैं अगर आज मैं ऐसा करूंगी तो भविष्य में अन्य बालायें भी ऐसा करेंगी दो हृदयों का जो परस्पर दान प्रदान होने में जो महत्व है वह जाता रहेगा। जब पिता ने अधिक जोर दिया तब उस समय सावित्री उत्तर देती है कि।

सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददामीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥
दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा।
सकृद्वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम्॥
मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाभिधीयते।
क्रियते कर्मणा पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः॥

अर्थात् जायदाद की बिक्री के लिये चिट्ठी एक बार ही आती है, कन्या का दान केवल एक ही बार किया जाता है, कोई वस्तु दूसरे को एक ही बार दी जाती है. संसार में तीनों काम एक ही बार किये जाते हैं, अतः जब मैं सत्यवान् को आत्म समर्पण कर चुकी तब फिर चाहे दीर्घायु चाहे अल्पायु अवगुणी व गुणी हों। जब तक इस शरीर में प्राण हैं तब तक मैं किसी दूसरे से पाणि ग्रहण न करूंगी. इसलिये पहिले मनुष्य किसी काम को करने का विचार करता है फिर भाषा द्वारा शब्दों में प्रकट करता है, अन्त में उसे कार्य रूप में परिणत करता है, अतः इस विषय में मेरा मन ही प्रमाण है। पाठको! सावित्री ने कैसा उत्तम उत्तर दिया।

आज से हजारों वर्ष पहिले बालाओं के भाव पवित्र उच्च व गंभीर थे। जिस समय सिद्धार्थ कुमार सांसारिक राज्य, ऐश व आराम को त्याग कर चले गये हैं, तत्पश्चात् उनकी अर्द्धांगिनी यशोधराने भी ऐश आराम को त्याग दिया और संन्यासिनी बनकर रहने लगी। सिद्धार्थ की माता ने अपनी पुत्र वधू का यह वेश देख कर कहा कि हाय तेरी क्या दशा हो गई जो यह तेरा शरीर फूल की शैय्या पर सोता था आज वह किस तरह धरणी पर सोता होगा यह तेरा कण्ठ हीरे मोतियों के बहुमूल्य हार से शोभा पाता था उसमें रुद्राक्ष की माला कैसे धारण करती होगी। तब यशोधरा ने उत्तर दिया हे माता जी! शान्ति रखिये यह संसार तो परिवर्त्तन शील है इसमें तो परिवर्तन हुआ ही करता है, इन वस्त्रों से मुझे किसी भी प्रकार का क्लेश नहीं है बल्कि मुझे गौरव है कि मेरे पतिदेव एक भारी कर्त्तव्य पालन करने के लिये सब वैभव पर लात मार कर चले गये हैं, माता जी! पार्थिव शरीर के सुख दुःख की परवाह करना कमजोर दिलों का काम है तुम जैसी उत्तम कुल की रानी को यह बातें नहीं शोभतीं। इसी भारत में सुलभा नामक संन्यासिनी हो चुकी है जिन्होंने महात्मा ज्ञानी जनक जी को भी शास्त्रार्थ करने में हरा दिया था और भी अनेक ब्रह्म वादिनी हो चुकी हैं जैसे कि गार्गी शांडिल्नी इत्यादि। पूर्वकाल में शिवरी जो थी वह ब्रह्मचारिणी थी उन्होंने मतंग ऋषि को अपना गुरु बनाया था और उनसे शिक्षा ली थी। शिवरी के हाथ के झूठे फल भगवान् ने खाये थे। वेदवती नाम की ब्रह्मचारिणी हो चुकी है जिन्होंने पुष्कर नामक तीर्थ पर एक मन्वन्तर तपस्या की थी उन्होंने तपस्या करके ही जीवन बिताया था। जब तपस्या करते २ बहुत काल व्यतीत हो गया तब उनको आकाश वाणी हुई हे देवि! तुम्हारी तपस्या से भगवान् प्रसन्न हैं और तुम ऐसे की सह धर्मिणी बनोगी कि जिसको सब ऋषि मुनि शीस नवाते हैं और जो त्रिभुवन पति हैं दूसरे जन्म में वही सीता नामक के तहां पैदा हुई। ईश्वर की प्रेमा भक्ति करने में मीराबाई बड़ी विदुषी स्त्री हो गई है उन्होंने अपनी माता से ही शिक्षा पाई थी बचपन में ही उनके हृदय में प्रेमा भक्ति लग गई थी मीराबाई ने जाति पाति का कुछ विचार न रक्खा था वह भक्ति प्रेम ही को उच्च समझती थी। उन्होंने जाति पाति का कुछ विचार न कर उन्होंने रैदास नामक सुशील चमार को अपना गुरु बनाया था। आज कल मीराबाई के भजनों में बड़ी प्रेम भक्ति टपकती है। सहजो बाई ब्रह्मचारिणी हो चुकी है जिनके बनाये हुये भजन व दोहे चौपाई उत्तम २ गाये जा रहे हैं इस भारत में अनेक पतिव्रतायें हो चुकी हैं जिनके नाम मंदालसा, कौशल्या, सुमित्रा, द्रौपदी, दमयन्ती

इत्यादि अब हम यहाँ पर यह विचार करते हैं कि स्त्री का क्या धर्म है, जो स्त्री विवाहिता है उनका धर्म यह है कि पतिव्रता धर्म को पालन करे क्योंकि विवाहिता स्त्री के लिये और कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं कि जिससे वह मुक्ति को प्राप्त करे। और कहा भी है:-

पतिर्देवो हि नारीणां पतिर्बन्धुः पतिः गुरुः।
पत्युर्गति समानास्ति दैवतं वा यथागतिः॥

अर्थात् स्त्री के लिये पति ही देवता है, पति ही बन्धु है पति ही गुरु है, पति के तुल्य स्त्री को दूसरा कोई भी देवता गति देने वाला नहीं है।

और भी कहा है:-

पतिव्रता व्रतार्थं च पतिरूपो हरिः स्वयम्।
सर्वं दानं सर्वं यज्ञः सर्वतीर्थं निषेवणम्॥

अर्थात् पतिव्रता स्त्री के लिये पति ही परमेश्वर रूप है सम्पूर्ण दानरूप यज्ञरूप और तीर्थ रूप उसके लिये अपना पति ही है। जैसे आगे बताया गया है कि पूर्वकाल में ऐसी २ पतिव्रता हो चुकी हैं उनके तुल्य ही आज होना चाहिये।

अनसूया जी कहती है:-

एकै धर्म एकव्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा।

स्त्री का एक धर्म एक व्रत एक नेम यही है कि काया से वचन से मन से पति के चरणों में प्रेम रक्खे। अपूर्ण

दीपमालिका

आई सब विधि सुखद सबहिं को,
मनु मनोज की सुमन मालिका।
हर्ष विनोद मोद मुद दायिनी,
सुख समृद्धि भरि विभव शालिका॥
दुःख ध्वान्त अज्ञान नाशिनी,
करत छार बहु अघ करालिका।
जागति जगमग ज्योति दिशहि दिशि,
चटक चांदिनी दीपमालिका॥
(रचयिता प्रमुदेव ब्रह्मचारी भगवद्भक्ति आश्रम)

भजन

(संग्रह कर्ता पं० गौरीशंकर ब्रह्मचारी)

राम कैसे पार उतारिये॥ टेक॥
कहा करूं कुछ बन नहीं आवे नदियां गहरा छोरे।
मल्लाह के नबरिया झांझरी कहा करिये॥ १॥
बादबान चप्पूना बल्लो ना कोई नेजू को थामन वारो
पवन चलत पुरवाई उचरत पनिया थी मझधार जोर पड़
कच्छ मच्छ औ मगर मच्छ से देख २ उनसे डरिये॥
औघट घाट फाट अति चौरो लहरियें लहर समन्दकी
उछल आई। पार की नाव जोबन की झलक आई॥
कहा करिये कित जइये, अपना जियाकु धीरज धरिये
बड़ी देर की आई किनारे बैठ रही मैं तुमरे सहारे।
अपनी मौज से नाव पै मोई कूं।
बेग बैठा कर हे परमेश्वर कृपा करिये॥

२

कहाँ के पथिक कहाँ कीनो गवनुवां॥ टेक॥
कौन देश कौन ठाँवरो वासी,
केहि कारन तुम तजे भवनवां॥ १॥
उत्तर दिशा में नगर अजुध्या,
नृप दशरथ जहां भये रजनवां॥ २॥
पिता के वचन सुन बन को निकस आये,
यहि कारन हम तजे भवनवां॥ ३॥
सीता के बचन सुन सखी पूछे पुनि २,
ये दोनों पथी कहां से आवनवां॥ ४॥
सीता मुसकाय बोली रस भरी बानी,
गोरे देवर पिया सांवरे वरनवां॥ ५॥
हाथ जोर बलि जाऊं चरनन की,
कब याही पंथ करोगे आवनवां॥ ६॥
तुलसी प्रभु बिन भवन न भावे,
मेरो मन हर लियो जानकी रवनवां॥ ७॥

३

अरी तेरो सांवरों री मारग में हमते अटके ॥
सही ना जाय कुचाल लाल की,
तेरे री गिरधर गोपाल की।
आन अचानक दधि की मटकी जोरा बारी पटके ॥
कोई बात की कमी ना तेरे,
फिरता है घर २ क्यूँ फेरे।
ऐसो लालच कहा छाछ को वृन्द २ को भटके ॥
जितने कौतुक हम संग कीने,
सब अपने हियमें लिख लीने।
राम स्वरूप नहीं भूलेंगी रात दिना म्हारे खटके ॥

४

कवन प्रभु तुम बिन मेरो और ॥ टेक ॥
हूं अपराधी पतित अपावन कामी कुटिल कठोर ॥
तामस देह महा अभिमानी हूं छल छीद्री चोर ॥
नेम लियो निन्दा को नितप्रति सब ते करी है मरोर ॥
ना समझो मूरख समझायो वृथा दिये दिन घोर ॥
जो देखे मतलब के देखे देखे लाख किरोर ॥
बिन मतलब कोई बात न बूझै बहुत मचाई रोर ॥
अधम उधारन नाम तिहारो प्यारे नन्द किशोर ॥
राम स्वरूप पतित की सुनियो विनय करे कर जोर ॥

५

धरो मन हरि चरनन को ध्यान ॥ टेक ॥
मो मति मूढ अचेत चेत नहीं,
नहीं लघु दीरघ ज्ञान।
उरमें तिमिर प्रकाश नेक ना,
किस विधि हो गुन गान ॥ १ ॥
तारी पद रज से ऋषिपत्नी,
आप ते भई जो पषान।
आय पवित्र दण्डक वन कीन्हों,
संग कुरंग पयान ॥ २ ॥
शिवरी सेन भक्त और पीपा,
छाई नामदेव री छान।
बड़े पतित पावन किये गणिका,
अजामील समान ॥ ३ ॥
जो जन भजे सोई फल पावे,
ज्यौं गावें वेद पुरान।
राम स्वरूप विमल यश प्रभु को,
तू पामर अघ खान ॥ ४ ॥

६

रे मन ओट लेहु हरि नामा ॥
जाके सुमिरन दुर्मति नाशे, पावहिं पद निर्वाना ॥
बड़भागी तेहि जनको जानों, जो हरि के गुण गावे।
जन्म २ के पाप खोय के पुन बैकुण्ठ सिधावे ॥
अजामील को अन्त समय में, नारायण सुधि आई।
जा गति को योगीश्वर, वांछत, सो गति छिन में पाई
नाहिंन गुण नाहिन कुछ विद्या, धर्म कौन गज कीना।
नानक विरद राम को देखो, अभय दान तेहि दीना ॥

७

आलोरी यह शोभा निहारें ॥ टेक ॥
नन्द लाल वृषभानु नंदिनी,
झूल रहे गल बैंया डारें ॥ १ ॥
परत फुहार विपिन हरियाली,
बन पक्षी मृदु बचन उचारें ॥२॥
अति निर्मल जल भरे सरोवर,
फूले कमल भंवर गुंजारें ॥ ३ ॥
पवन झकोर उड़त पिय को पट,
झट प्रीतम निज हाथ संवारें ॥४॥
नारायण इनकी या छवि पै,
आज सखीहम सर्वस वारें ॥ ५ ॥

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन पाहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में विना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक

राव श्रीराम जी रईस नागल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कौंसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
जमादार कुन्दनलाल नयागांव उर्फ शाहजहांपुर	२५)

सहायक

प्रोफेसर परमानन्द जी इलाहाबाद २०)
बा० चन्दीप्रसाद जी अकाउण्टेन्ट इलाहाबाद २०)
दीवान बहादुर सेठ गोपालदास बल्लभदास, भोपाल १५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली १५)
पं० जगदम्बाप्रसाद शर्मा एडवोकेट रायबरेली ११)
नायक धनसिंह जी ट्रूमना ७)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली ५)
बड़िया बाबा, मन्दिर श्री दादा जी खेतड़ी ५)
जमादार दीपचन्द जी ५)
लाला ओंकारमल जी कानपुर ५)
बाबू हीरालाल जी इंकमटेक्स अफसर गुड़गावा ५)
हवलदार ठाकरसिंह मूसेपुर ५)
भूरासिंह शेखूपुरशिकारपुर (घासेड़ा) ५)
लाला रामेश्वर जी गुप्ता ,, ५)
बाबू रामस्वरूप गनेश मिल दिल्ली ५)
चौधरी वंश गोपाल जी वायस चेयरमैन करनाल ५)
ला० पन्नालाल मंगूमल जी लखनऊ ५)

विषय सूची

नं०	लेख / लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	३३
२.	वैकुण्ठ या साकेत (ले० श्री महावीर प्रसाद् जी वजरङ्गबली, श्री वास्तव	३४
३.	भक्ति में शक्ति (ले० प्रभुदेव जी ब्रह्मचारी आश्रम	४१
४.	प्रेम प्रादुर्भाव के लक्षण [ले० भक्तरत्न श्री मथुरा प्रसाद जी जयपुर	४३
५.	भगवद्भक्ति [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी	४४
६.	सरस सूक्तियाँ (कविता) [रचयिता पु० प्रतापनारायण जी कविरत्न	५२
७.	अद्वैतामृत	५३
८.	भिक्षा (कविता) [रचयिता साहित्य रत्न पं० बाबूलाल भार्गव	५६
९.	योग साधन (ले० श्रीस्वामी शिवानन्द जी	५७
१०.	बृज मंडल की गोचर भूमि [ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी झूसी	५६
११.	श्री कृष्ण छवि (कविता) [रचयिता श्रीमतीव्रजकुमारी 'प्रभाकर' आश्रम	६०
१२.	आदर्श स्त्री जीवन (लेखिका श्रीमती व्रजकुमारी	६१
१३.	दीपमालिका (कविता) [रचयिता प्रभुदेव ब्रह्मचारी आश्रम	६३
१४.	भजन [सं० पं० गौरीशंकर ब्रह्मचारी आश्रम	६३

REGD No. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

मूल्य ॥=)

१. भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित ... मूल्य ॥=)
२. भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ... " ।=)
३. गीता मूल (मोटा टाइप) ... ... मूल्य नि[illegible]
४. वेदोपनिषद् ... ... ।=)
५. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला ... ... " =)॥
६. ज्ञानधर्मोपदेश ... ... " =)॥।
७. भक्ति ज्ञान योग संग्रह ... ... " =)॥
८. सत्य शब्द संग्रह (गुटका) ... ... " ।)
९. सत्य शब्द संग्रह ... ... " ॥=)
१०. शब्द सदाचार संग्रह ... ... " =)॥।
११. शब्द सार संग्रह ... ... " =)॥
१२. शब्दसंग्रह ... ... " =)॥
१३. सारसंग्रह ... ... " ।)
१४. भाषा कविकका प्रकाश ... ... " ।=)
१५. मनुस्मृति सार ... ... " ≡)
१६. भक्ति चिन्तामणि ... ... " ।≡)
१७. भगवद्भक्तांक ... ... " ॥=)
१८. भगवदंक ... ... " ॥।)
१९. गवांक ... ... " १)
२०. महात्मांक ... ... " १)

नोट:-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहिये।

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक रामानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।